उत्तरप्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

झाँसी की रानी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी–१
कलकत्ता–७

संशोधित सस्करण
[जनवरी, १९५९]

मूल्य : ५.००

प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बॉ० न० ७०, ज्ञानवापी, वाराणसी–१
मुद्रक · सन्मार्ग प्रेस, वाराणसी–१
आवरण · काजिलाल

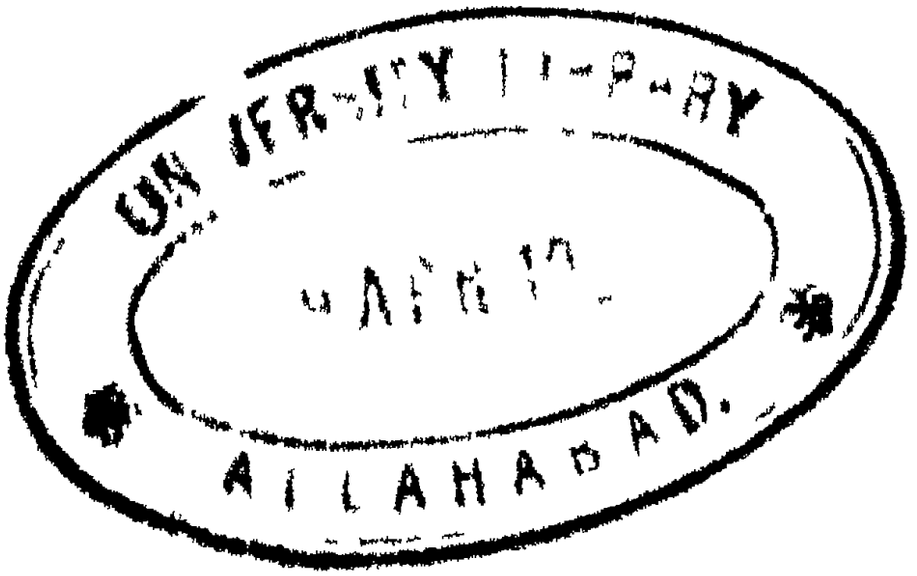

परम पूज्या

रानी छोगी देवी जी बिड़ला

को

सादर समर्पित

—श्यामनारायण प्रसाद

परिचय

महारानी ! समय की गति मे जब तेरी यह हुकार गूँजती रहती थी कि स्वतत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, इसके लिये यदि शोणित की सरिता लहराती होगी तो लहरा दूँगी, मुण्डो का पहाड बनाना होगा तो बना दूँगी, कबन्धों की सीढ़ी बना कर विजयध्वज को अम्बर के मस्तक पर फहराना होगा तो फहरा दूँगी, इतना ही नही यदि नश्वर शरीर की आहुति से ही इस महायज्ञ की पूर्णाहुति होनेवाली होगी तो वह भी सहर्ष स्वीकार है । पत्ता-पत्ता तेरे सदेश को सुना रहा था कि स्वतत्रता का पुजारी कटार की धार को कोमल पथ-धूल समझ कर दुर्द्धर्ष अनल की लपटों को फूलो का मधुर- सुहास समझ कर अथाह समर-सिन्धु को गो-पद प्रमाण सम मान कर कल्याणमय प्रशस्त पथ पर प्राण-सुमनो से अर्चना की थाली सजा कर जय-जयकार करता हुआ देवीकी आराधना के लिये विहँसता हुआ आगे बढ़ता है । विघ्न-बाधायें चेरी बन कर उसका पद चूमती हैं । उसके लिये मेंदिनी अमरावती है । हाथ का कृपाण वज्र है । पक्षियों के कलरव में तेरा यह उपदेश गूँजता रहता था कि स्वतत्र वीरान-प्रदेश पराधीन अभ्रभेदी प्रासादों से श्रेष्ठ है । आजादी का नारा लगानेवाले निर्झर का शीतल पानी पराधीनता के सुगन्धित पदार्थों से वासित जल से सहस्र गुना पेय है । स्वतत्र-घासों की रोटी परतत्र षट्रस व्यजनों से स्वादिष्ट है । तेरी विजय ध्वनि से यह राग गूँजता रहता था कि 'सत्य संकल्प ही विजय का प्रथम जयघोष है ।' तब मानस गद्‌गद् हो उठता था । अंग-अग फड़कने लगता था । लेखनी तलवार बन जाना चाहती थी; लेकिन वह शैशवावस्था थी । पावो में लडखड़ाहट थी, हाथो में कम्पन था । मानस-पटल पर असमर्थता गरजती रहती थी । आज टूटे-फूटे शब्द रूपी सुमनों से कीर्ति-माला पिरोनेका प्रयत्न कर रहा हूँ । क्षमा याचना सहर्ष स्वीकार हो ।

सम्राज्ञी ! तेरा बालरूप छबीली के नाम से विभूषित था जिसमें वीरत्व शैशव की कोमलता के आँचल से झाँक रहा था । निर्भीकता रोम-रोम में बस रही थी । नस-नस में वीर रस लहरा रहा था । बिठूर के बाहर नाना साहब और राव साहब के साथ पतित-पावनी-गंगा के रम्य पुलिनपर तेरी घोड़े की सवारी बता रही थी कि भविष्य में तेरा क्या रूप होगा ? घुड़दौड़ में नाना साहब का घोड़े पर से गिर जाना और शीघ्र ही घायल साथी को घोड़े पर बैठा कर एक

हाथ से उसको पकड़े हुए और दूसरे से लगाम सँभालते हुये तीव्र गति से किले को लौट आना तेरे अश्वारोहण की परीक्षा थी। दूसरे दिन सन्ध्या के समय नाना साहब का दूसरे लड़को के साथ हाथी पर बैठ कर घूमने के लिये बाहर निकलना और तेरा मचल-मचलकर हाथी पर चढ़ने के लिये रोना इस पर सान्त्वना देते हुये पिता मोरोपन्त का कहना कि बेटी ! तेरे भाग्य मे हाथी नही है। इस पर तुम्हारी सत्यपूर्ण भविष्यवाणी 'एक नही दस हाथी मेरे भाग्य मे है' बता रही थी कि तुममें कितना आत्मबल और सत्य-सकल्प था उस समय तेरी आयु १२-१३ वर्ष की थी और नाना साहब की १५-१६ वर्ष की।

गगाधर राव झाँसी के सिंहासन पर आरूढ अवश्य थे, लेकिन स्वत्व उनके हाथ से धीरे-धीरे खिसक चला था। राज्य का कामकाज अग्रेज रेजिडेण्ट करता था। राजा की आयु चालीस वर्ष के करीब हो चली थी, वे सन्तान-हीन थे। रानी यौवनावस्था के प्रथम सोपान पर पग रखते ही दुनिया से चल बसी थी इसलिये राजा चिन्तित रहा करते थे। जीवन की आशा मुरझाती जाती थी। तूने उन्हे गले से लगाकर मानस की मुरझाई कलियो को फिर से हरा-भरा बना दिया। फिर से नव जीवन आ गया। तुम्हे रनिवास मे बैठ कर दासियो के बीच विलासिता में ऊँघना पसन्द न था, अलकारों से विभूषित मेहदी की लाली में वासनामयी सौन्दर्य की सेविका बनना पसन्द न था। तुम्हारी बाल सहेली तलवार थी। भाले प्यारे बन्धु थे और अखाडे की मिट्टी अगराग थी। तुम्हारे हृदय में अंग्रेज रेजिडेण्ट का शासन खटक रहा था। अग्रेजो के साथ वह सन्धि-पत्र जिसमे राज्य का पंचम अश अग्रेजी फौज के खर्च के लिये चला गया था कलेजे मे काँटे की भाँति चुभ रहा था। उसी मर्मस्थल के काँटों को निकालने के लिये रनिवास में नारी-सेना बना रही थी। दासी सुन्दर, मुन्दर और काशी-बाई के साथ तुम्हारा सहेली का सा व्यवहार था। वे दासियाँ जो फूल से भी कोमल थी पत्थर सा कठोर बनने को तैयार हो गईं। जो शरीर नाना प्रकार के आभूषणों से चमचमाता रहता था वह बरछी, भाले, तीर और कटारोसे दमदमा उठा। जो केश भाँति-भाँति के रग-बिरगे फूलों से सजे रहते थे अब अखाडे की शक्तिदायिनी मिट्टी मे लहराने लगे। जो सखियाँ अपने पति के अतुलित प्यार के लिये लालायित रहती थी वे रण-निमंत्रण की राह देखने लगी। यह तेरे सच्चे हृदय के वीर मत्र का ही प्रभाव था कि मुर्दे भी हाथ मे तलवार उठा लेना चाहते थे। हड्डियो से क्रोधाग्नि धधकने लगती थी।

मातेश्वरी !- जीवन में सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख अवश्यम्भावी है। वसुधा वसन्त की गुदगुदाहट से हँस कर ग्रीष्म की लपटों मे चीत्कार कर

उठती है । पावस की हरियाली मे लहरा कर शीत के थपेडो से आक्रान्त हो काँप उठती है । यदि तेरे यौवन के वसन्त मे ग्रीष्म की ज्वाला धधक उठी तो चिन्ता का विषय नही । चिन्ता का विषय तो था तेरे दुधमुँहे लाल का तीन मास की आयु मे आँखो से ओझल हो जाना । पर इसमे बस किसका ? इसी से कहा जाता है कि दैव निष्ठुर है । पुत्र शोक की असह्य वेदना से झाँसी के सूर्य भी अस्त हो गये । रह गया वश मे दीपक की भाँति टिमटिमाता बालक दामोदरराव जिसे राजा ने मरने के पहले ही गोद ले लिया था । वही तेरे हृदय के घाव को भरे हुए था, लेकिन शत्रु के गोद अस्वीकार करते ही वह पुनः पुरवा हवा लगने की भाँति हरा हो गया । तू फिर मुड़ा कर तपस्विनी की भाँति काशी की यात्रा करना चाहती थी लेकिन अंग्रेजो ने इसे अस्वीकार कर दिया । इस पर तेरा भवानी का साकार रूप धरा पर चमक उठा और तू प्रलय के मेघ की भाँति गरज उठी, "जब तक भारत स्वतन्त्र नही होगा मै बाल नही कटाऊँगी" तेरी यह अमरवाणी अम्बर के अन्तःपट में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गई ।

विजये ! तू स्वतन्त्रता का झण्डा उठाने के पहले, कण-कण में वीर-मंत्र फूँकने के पहले, राख मे दबी मरणासन्न अग्नि को पुनः हुंकार का सहारा देख कर जगाने के पहले यह देखना चाहती थी कि जाति मे कितना बल है । धर्म मे कितना हृदय है और समाज में स्वतन्त्रता, आत्मगौरव और देशोत्थान के लिये शोणित का सागर लहरा कर जीवन की बाजी लगा देने का कितना साहस है । कितना आत्मबल और पुरुषत्व रवानी है । पुत्र दामोदर राव के यज्ञोपवीत द्वारा क्रूर शत्रुओ की आँखो मे धूल झोक कर स्वच्छ जल के तल की भाँति देख लेना तेरी ही बुद्धि की बलिहारी थी ।

पूज्ये ! सुन्दर, मुन्दर और काशीबाई सखियों के साथ पवन को भी गति की शिक्षा देनेवाले घोडों पर सवार होकर काल-सर्पिणी सी फुफकारती बेतवा नदी के विशाल दुर्जेय वक्षस्थल को चीरती हुई, विघ्न-बाधाओ के मर्मस्थल को चलदल की भाँति कँपाती हुई पावस के हरित-प्रभात के गात पर लोहिताक्षरों मे सूरमा की कहानी लिखती हुई, खिसनी के घोर जगल मे, जिसमें दिन पर रात की, प्रकाश पर अन्धकार की और तुमुल कोलाहल पर नीरवता की विजय-पताका फहराती रहती थी, रहनेवाले डाकू सागर सिंह की कमर में हाथ डाल कर जीते जी पकड़ लेना तुम्हारी ऐसी वीरा को ही सुलभ था । वीर सागर सिंह के स्वार्थपूर्ण क्रूरता से भरे हृदय को देशाभिमानी बना देना, प्रधान सेना-पति के रूप में अपनी जाति-धर्म की स्वतंत्रता के लिये मर मिटने का अदम्य उत्साह भर देना तेरे ही बाहुबल और बुद्धिबल का कौशल था ।

राजेश्वरी ! दिल्ली के अन्तिम सम्राट्, स्वतंत्रता के प्रथम जयघोष सुनाने-वाले वृद्ध बहादुरशाह की एलान 'ऐ हिन्दुस्तान के बाशिन्दो ! अगर हम इरादा कर ले तो बात की बात में दुश्मनो का खात्मा कर सकते हैं । हम दुश्मन का नाश कर डालेगे और अपने देश और अपने धर्म को जो हमें अपनी जान से भी प्यारे हैं खतरे से बचा सकते हैं । हिन्दुस्तान के हिन्दुओ और मुसलमानो ! उठो ! भाइयो उठो ! खुदा ने जितनी बरकतें इन्सान को अता की है क्या वह जालिम नापाक जिसने धोखा दे-देकर ये बरकतें हम लोगों से छीन ली हैं हमेशा के लिये हमें उससे महरूम रख सकेगा ? क्या खुदा की मरजी के खिलाफ इस तरह का काम हमेशा जारी रख सकता है ? नही, नहीं, फिरंगियों ने इतने जुल्म किये हैं कि उनके गुनाहो का प्याला लबरेज हो चुका है । यहाँ तक अब हमारे पाक मजहब को नाश करने की नापाक खाहिश भी उनमें पैदा हो गई है । क्या तुम अब भी खामोश बैठे रह सकोगे ? खुदा अब यह नही चाहता कि तुम खामोश रहो क्योकि उसने हिन्दू और मुसलमानों के दिलों में अग्रेजों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख्वाहिश पैदा की है और खुदा की फजल और तुम लोगों की बहादुरी के प्रताप से जल्दी ही अग्रेजो को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान मे उनका जरा भी निशान न रह जायगा । हमारी इस फौज में छोटे और बड़े की तमीज भुला दी जायगी और सब के साथ बराबरी का बरताव किया जायगा; क्योंकि इस पाक जंग में अपने धर्म की रक्षा के लिये जितने लोग तलवार खीचेगे वे सब एक समान यश के भागी होंगे । वे सब भाई-भाई हैं उनमे छोटे-बड़े का कोई भेद नही इसलिये मै फिर अपने तमाम हिन्दू भाइयों से कहता हूँ उठो और ईश्वर के बताये हुए इस परम कर्त्तव्य को पूरा करने के लिये मैदाने जग में कूद पडो । तमाम हिन्दुओ और मुसलमानो के नाम हम महज अपना धर्म समझ कर जनता के साथ शामिल हुए हैं । इस मौके पर जो कोई कायरता दिखायेगा या भोलेपन के कारण दगाबाज फिरंगियो के वादों पर एतबार करेगा वह शीघ्र ही शरमिन्दा होगा और इगलिस्तान के साथ अपनी वफादारी का उसे वैसा ही इनाम मिलेगा जैसा अवध के नवाब को मिला । इसके अलावा इस बात की भी जरूरत है कि इस जग में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिल कर काम करें और किसी प्रतिष्ठित नेता की हिदायतों पर चल कर इस तरह का व्यवहार करें जिससे अमनो-आमान कायम रहे और गरीब लोग सन्तुष्ट रहें तथा उनका अपना रुतबा और उनकी शान बढ़े । जहाँ तक मुमकिन हो सकता है सबको चाहिये कि इस एलान की नकल करके किसी आम जगह पर लगा दें । तेरे रोम-रोम में महत्त्वाकांक्षा जाग रही थी । बीबीगढ़ में वसुन्धरा की छाती

पर गोरी मेमो और बच्चो के खून के पडे धब्बे को जबरदस्ती ब्राह्मणों की जीभ से चटवाना और चटवा कर साफ करा कर फाँसी के तख्ते पर झुला देना तेरे हृदय मे धर्म की रक्षा के लिये आततायियो के प्राणों की होली जला देने की दुर्द्धर्ष क्रोधाग्नि जगा रहा था ।

अजनाला आज भी शून्य में रणभेरी बजा-बजा कर मंत्र फूँक रहा है और वेदना से पागलों की भाँति कह रहा है कि क्रूर आततायी कूपर ने तहसीली इमारत के सौ गज के गुम्बज में छाछट निर्दोष असहाय हिन्दू और मुसलमान स्त्री बच्चों को बन्द किया था । जेठ की ज्वालामयी रात थी । वे बिना पानी और हवा के तडप-तडप कर चल बसे । जो शेष बचे उनको जाति-द्रोही, धर्म-नाशक, दूसरों के अन्न पर पलनेवाले कुत्तों ने गोली का निशान बना डाला । मेदिनी काँप उठी, गगन हाहाकार कर उठा । इतना ही नही अधमरे लोगो को एक छोटे से सकरे कुएँ मे डाल कर ऊपर से मिट्टी से बिल्कुल ढक दिया । इन सब घटनाओं के सुनते ही तेरी क्रोधाग्नि अनन्त को चूम लेना चाहती थी । अदम्य उत्साह भरा रोम-रोम का कम्पन दिगन्त को कँपा देना चाहता था । वक्र भृकुटि प्रलय मचा देना चाहती थी । तेरी काल सर्पिणी सी फुफकारती तलवार भवानी की जीभ सी लपलपाती अरि-दल के हृदय-सिन्धु मे लहराते शोणित को जेठ की तपती मरीचिका की भांति पान कर जाना चाहती थी । तू समय के सूत्र मे अनुभवो की माला पिरो रही थी । युग की जंगित तलवारों को रवानी के पानी से धोकर सत्य संकल्पमय हुंकारों के ताप से तप्त कर रही थी । देख रही थी उस बेला को जब एक एक बूँद खून के ऊपर भारत के सहस्र सपूतो के कल-कण्ठों से विजय ध्वनि दिशाओं को बधिर बना कर अरि-उर-जलद- पटल को कदली के पत्ते के समान कर-कर काटती हुई अनन्त में विलीन हो जायगी । तू समर-सिन्धु को पीने के लिये अगस्त्य से वरदान माँग रही थी । विघ्नों के तम-तोम को निगल जाने के लिए भगवान् अंशुमाली से प्रकाश माँग रही थी । जाति की रक्षा के लिये सम्राट् से शत्रु के सीने में कटार भोंक देने के लिये माता के आँचल मे सोई कर्णवती को जगा रही थी । वीरों की अमर कहानी सुनने के लिये विश्ववन्द्य राजमाता जीजाबाई को विवश कर रही थी । झझावात के विकट गर्जन में रूप कुसुम के मधुर मुसकान को चिर नवीन बनी रहने के लिये देवल देवी की आराधना कर रही थी ।

सर्वमगले ! दीवाने-खास के पर्दे के दूसरी ओर रणचण्डी का रूप दमदमा रहा था । सामने कुर्सी पर बालक दामोदरराव आश्चर्य में डूबा हुआ बैठा था । बगल में मंत्री गण और दरबारी विराजमान थे । दायी ओर पिता मोरोपन्त

आश्चर्य और कौतूहलपूर्ण नेत्रों से मालकम की ओर देख रहे थे। मालकम ने जेब से कागज निकाला और रानी के प्रतिकूल डलहौजी का घोषणा-पत्र पढ़ सुनाया जिसको सुनते ही पिता पन्त के मुँह से निकला 'अनर्थ हुआ' दरबारियोंने कहा 'अनहोनी बात है'। बालक दामोदरराव भी समझने का प्रयत्न किया लेकिन बालपन की चपलता के कारण समझ न सका कौतूहलपूर्ण आँखे ऊपर देखती रह गईं। परदा हिला, पीछे से बिजली सी कडक हुई। "मैं अपनी झाँसी नही दूँगी" मेदिनी थरथरा उठी, मालकम की छाती धड़क उठी। वायुमण्डल ने अपने मर्मस्थल के घाव को उस शब्द रूपी मलहम से अच्छा किया। भरतखण्ड के इतिहास के पृष्ठ पर स्वर्णाक्षिरो मे अकित हो गया। नगाधिराज के मस्तक पर के चमचमाते मुकुट में मुक्ता की माला बन कर चमक उठा। भयके मारे माल-भ्रम की पेशानी से पसीना टपकने लगा। काँपता हुआ तीन डग में ही दीवाने खास से बाहर चला गया। इसके बाद वीर सपूतो के मानस में तेरा वीर मंत्र गूँजने लगा कि आज फिर से जाग उठने का समय है यदि स्वतंत्रता देवी की आरा-धना के लिए एक इच भी भूमि न मिले तो वायु में ज्वाला बन कर लहराना है, जलद मे बिजली बन कर मुसकाना है और अचल सम शत्रु के ऊपर वज्र बनकर घहराना है। अब कुवते बाजू से माता की बिखरी लड़ियो को पुन· प्रेम-सूत्र में पिरो कर अर्चना के लिये महत्त्वाकाक्षाओ की माला पिरोनी है। लज्जा की मुरझाती हुई फुलवारी को फिर से हृदय-रक्त से सीच कर हरा-भरा बनाता है। इस वीर मत्र को पवन गुनगुनाता हुआ चारों ओर विचरने लगा। तरु-तरु की शाखाओ पर पक्षियो ने यशोगान गाया। दिशाये मुसकरा उठी।

धर्म सेविके! जिस समय तू झाँसी के वीर सपूतों में मत्र फूँक रही थी उसी समय नत्थे खाँ का सन्देश मिला कि झाँसी पहले ओरछा का अग रहा है वह अनुचित रीति से ओरछा से हडप लिया गया है अब उसे वापस कर देना चाहिये। यह सदेश सारे नगर मे बिजली की भाँति फैल गया। इसी के साथ ही साथ यह भी खबर फैल गई कि वह बीस हजार सेना लेकर झाँसी पर हमला भी करने आ रहा है। झाँसी के सभी कर्मचारी घबडा गये; क्योंकि सेना पूर्णरूप से तैयार न हो पाई थी। यह सन्देश मातेश्वरी! तेरे कानो में पडा मानस कमल की भाँति विहँस उठा, रोम-रोम फडक उठा, म्यान में तलवार तमतमा उठी। गुरु भोपटकर का यह वाक्य कि "युद्ध प्रारम्भ करने के पहले अपने झण्डे के साथ-साथ यूनियन जैक रक्खा जाय" इस पर तेरा यह अदम्य उत्साह कि मेरा गेरुआ झण्डा सब से ऊपर की बुर्ज पर रहे ता। यूनियन जैक नीचे की किसी भी बुर्ज पर रख दिया जा सकता है—बता रहा था कि कितना बड़ा स्वदेशाभिमान

हृदय में भरा है। विघ्नों का पहाड चुटकी बजा कर उड़ा देने का कितना पौरुष विशाल बाहुओं मे भरा है। जाति अभिमान का कितना बडा ताज सिर पर चमचमा रहा है, अथाह सागर की भाँति कितनी अनिर्वचनीय धीरता हृदय मे विहँस रही थी। अनन्त चतुर्दशी का दिन था मातेश्वरी ! तेरा दिन भर का उपवास था। अभी दो चार ग्रास ही फलाहार कर पाई थी कि इसी बीच खबर मिली कि नत्थे खाँ का गोला टकसाल के पीछे एक सेठ के मकान मे गिरा है। फलाहार थाली मे ही पडा रह गया। तू वीर वेष मे तुरन्त घोडे पर सवार होकर अपनी तीनो सखियो को साथ ले ओडछा फाटक पर जा पहुँची। गुलाम-गौस खाँ में मत्र फूँकने लगी, 'शत्रु इसी ओर है गोलो की वर्षा लगातार करना।" इसी भाति सखियो के साथ हवा में उड-उड कर सभी फाटको के गोलन्दाजो को सावधान करने लगी। नत्थे खा की सेना की तोपो की दूसरी बाढ दगने भी न पाई और किले के तोपो की क्रोधाग्नि गगन चूमने के लिये बढ चली। अरि-सेना फतिंगो की भाँति जल-जल कर राख होने लगी। अन्तरिक्ष चीत्कार कर उठा। पवन थर-थर काँपने लगा, मेदिनी डगमगा उठी। तू काल-सर्पिणी की जिह्वा की भाँति लपलपाती तलवार हाथ में ले सखियों के साथ शत्रु-सेना पर उल्कापात सदृश टूट पडी। बात की बात मे लाशो के ढेर एकत्र हो गए, शोणित की सरिता शस्य श्यामला के अचल को रंजित करने लगी। नत्थे खाँ को होश आया मै किससे लड रहा हूँ ? यह तो साकार भवानी है और जान लेकर मैदान से भाग खडा हुआ। अम्बर के मस्तक पर झाँसी की विजय पताका फहराने लगी।

तेरी इस विजय से शत्रु के कान खड़े हो गये। तेरा अदम्य उत्साह, अजेय पौरुष, अतुलनीय निर्भीकता और धीरता अंग्रेजो के हृदय मे टीस पैदा करने लगी। तेरे इस संग्राम को देख अंग्रेज समझ गये कि रानी अकेले ही स्वतंत्रता संग्राम का यंत्र संचालन कर सकती है। तेरा अपनी सखियों को साथ ले नत्थे खाँ की बीस हजार सेना के ऊपर टूट पडने का साहस और दुर्जेय आत्म-बल शत्रु के हृदय में शंका उत्पन्न कर दिया कि किसी समय रानी हमलोगों के सीने में भी कटार भोक सकती है। ताज को पैरो से रौद सकती है; यूनियन जैक को पैर के नीचे कुचल कर अम्बर के मस्तक पर गेरुआ झण्डा फहरा सकती है। किसी न किसी बहाने से अंग्रेज तेरे इस उत्साहपूर्ण शौर्य को भंजमाना चाहते थे। भवानी ! तुझसे अंग्रेजों की यह कूटनीति छिपी न रह सकी। भला स्वच्छ जल के तल की कीचड़ छिपी रह सकती है, वह कौन सी आकृति है जो दर्पण के सामने अपने को अलक्ष रख सके। दूसरे दिन दीवाने खास मे माता के वीर सपूत जवाहर सिंह और रघुनाथ सिंह बुलाये गये। राजेश्वरी ! तू अपने स्वतन्त्रता

संग्राम के कार्य को और तेज करना चाहती थी। दोनो वीर सपूतों को आज्ञा मिली तोपें ऐसी ढाली जायँ जो न तो पीछे धक्का दें और न जल्दी गरम ही हों। विनीत भाव में उत्तर मिला, श्रीमतीजी बख्शीजी की निपुणता से ऐसी ही तोपें ढाली जा रही हैं। पुन: प्रश्न हुआ और बारूद ? उत्तर मिला, 'तीन महीने के युद्ध के लिये तैयार है। आप किसी बात की चिन्ता न करें। सभी सामान पूर्णरूप से तैयार हो रहा है और तैयार भी है।' रानी ! तेरे मुख-मण्डल पर सन्तोष की रेखा चमक उठी, पवन मे यह ध्वनि लहराने लगी कि मैं भी अपनी सखियों और अन्य झाँसी की नारियों को सैन्य संचालन और गोलन्दाजी की शिक्षा दे रही हूँ। इसी बीच अग्रेजो का दूत पत्र लेकर पहुँचा उसमें लिखा था "रानी ! शायद छिपे-छिपे विप्लवकारियो का साथ दे रही है। यह विश्वासघात है। वे निरस्त्र मेरे यहाँ चली आवें इसी में उनकी भलाई है"। पत्र पढ़ते ही भवानी ! तेरा खून खौल उठा, चेहरा तमतमा उठा, शत्रु को उत्तर मिला, 'भारतीय नारी कभी भी किसी पर पुरुष का विश्वास नहीं करती और न तो निरस्त्र किसी से मिलती ही है। यदि आज्ञा हो तो मैं श्रीमान् की सेवा में अपने अंगरक्षकों के साथ उपस्थित होऊँ।" इतना कह कर पुन. बुर्जों पर जाकर तोपें रखवाने लगी। २० मार्च को सबेरे झाँसी के पूर्व-दक्षिण कामासिन देवी की टौरियों के पीछे लगभग तीन मील के अन्तर पर असंख्य तम्बू तनने लगे। आड़ में असंख्य तोपें छिपाई जाने लगीं। राजरानी ! तेरी दूरबीन के सम्मुख छिपा न रह सका। सारी झाँसी नगरी में कोलाहल मच गया। अवसर पाकर नगर की विकराल तोपें गरज उठी। तू भी अपनी प्राण प्यारी सखियों के साथ घोड़े पर सवार होकर युद्ध संचालन करने लगी। बात की बात में झाँसी के बाहर कबन्धों के ढेर टीले बनाने लगे। सारे गगन में धुँआ ही धुँआ हो गया। दिन में अमावस्या की कालिमा छा गई। चक्रवाक अपनी प्रियतमा से अलग होने लगा, पक्षीगण अपने-अपने नीड़ो को लौटने लगे, शृंगाल तारस्वर में निशाचरों का जय-जयकार करने लगे। पिशाचिनी हाथ में खप्पर ले-लेकर अट्टहास करती हुई विचरने लगी पुन. भाग्य का सूर्य चमकने लगा। भारत की निराशा का अन्धकार लापता हो गया। विजय-पताका अनन्त के मस्तक पर फहरा उठी। शत्रु जनरल की आशा मरु पानी फिर गया। अपनी उँगलियों पर गिनने योग्य सेना लेकर शिविर को लौट आया।

क्या तू नही जानती थी कि स्वतन्त्रता सग्राम के प्रथम सेनानी वीर केशरी शिवाजी को औरगजेब की कैद में डलवानेवाला अपना ही वंशज कृतघ्नी था। रण-पुगव सिसोदिया-कुल-भूषण महाराणा प्रताप को जंगल की खाक छनवाने-

वाला सगा सहोदर शक्तिसिंह ही था। चन्देल वंश-अवतंस पृथ्वीराज की आँखें निकलवानेवाला स्वयं फुफेरा भाई जयचन्द था। मेवाड केशरी रत्नसिंह को कैद करा कर त्रैलोक्य सुन्दरी लज्जा की साकार प्रतिमा पातिव्रत की मूर्ति रानी पद्मिनी को जौहर के हुताशन के आसन पर बैठा देनेवाला अपना ही मन्त्री राघव चेतन था। मातेश्वरी! भूल हो गई जो न समझ सकी कि स्वच्छ जल के नीचे भी कीचड होती है, विश्वास कर बैठी नमकहराम तुर्क पीरअली और जाति के कलक दूल्हाजू का जो अंग्रेजो से मिले हुए थे। छिपे-छिपे किले का सारा भेद दे रहे थे। इतना ही नही जाति-द्रोही दूल्हाजू ने तो हाथ में गगाजल लेकर ओडछा फाटक खोलने की कसम भी खा ली थी; केवल दो गाँव की जागीर मिलने की लालच से।

पुनः दूसरे दिन पौ फटी। भगवान् अशुमाली का तमतमाया चेहरा दिखाई पड़ा। आज की क्रोधाग्नि विचित्र थी। पता नही, शायद रात्रि के उन देशद्रोहियों और कृतघ्नियो से शत्रु के मिलने और ओड़छा फाटक खोलने की शपथ को सुन कर। रानी शत्रु के गोलो से नष्ट हुए किले की मरम्मत करवा रही थी। बुर्जों पर तोपें और गोले रक्खे जाने लगे। रण का बिगुल बजा, दमामे गरजने लगे। गोलों का जवाब गोले देने लगे। दिगन्त थरथरा उठा, मेदिनी काँपने लगी, दोनों ओर के सेनानी अपना-अपना रण कौशल दिखलाने लगे। शाम हो चली, लेकिन किसी की विजय-पताका आकाश में न उड़ी। अंग्रेजो के जान-माल की बहुत बडी क्षति हुई। निशा मरे हुए बीर सपूतों के ऊपर आँसू के कण बिखराती हुई थके-माँदे सिरदारियों को आँचल से ढँक कर सुलाने के लिये आकाश से उतर पड़ी; लेकिन उन रण-मतवालों को आराम कहाँ? उनको तो आराम मिल रहा था शत्रु के कबन्धों की सीढ़ी बना कर स्वर्ग चढ़ने में, और अरि सिर का गेंद खेलने में। उस रात्रि में सखी सुन्दर को दूल्हाजू की कुमुक सौंपी गई। गोलन्दाजी में वह दूल्हाजू की ही शिष्या थी। सन्ध्या के बाद सुन्दर ओरछा फाटक पर आ डटी। दूल्हाजू आराम करने चला गया। दूसरे दिन फिर काम पर आ गया। अंग्रेजी सेना फाटक के सामने डटी हुई थी। सन्ध्या हो चली थी, सुन्दर अपने स्थान पर आ पहुँची जिसको दूल्हाजू ने नही देखा। गोरी सेना ने पीछे से लाल झण्डा दिखाया। दूल्हाजू नीचे उतर कर लोहे की एक बड़ी सलाख लेकर फाटक के ताले तोड़ डाले इस बात को सुन्दर ने देख लिया, तलवार लेकर गरजती हुई उसके सामने पहुँची। सामने डटकर खड़ी हो गई और धिक्कारने लगी, "नीच! जातिद्रोही क्या रानी के विश्वास का जवाब दे रहा है तुझे क्या मिलेगा इतना बड़ा अनर्थ के करने से? इस पर भी वह न

माना। सुन्दर ने उसके ऊपर तलवार का वार किया। उसको उस कृतघ्नी नें लोहे के सलाख पर रोक लिया। तलवार टूके-टूक हो गई। उस नीच ने उस वीरागना के सीने में सलाख का खोवा मारा निशाना अचूक था। इसी बीच अंग्रेजी सेना भी फाटक खुलने से गरजती हुई किले के भीतर घुसी। एक सिपाही की गोली आहत सुन्दर को लगी वह उसी स्थान पर रानी का जयजयकार करती हुई ढेर हो गई। दुश्मन की सेना गरजती हुई किले में घुस गई। देखते ही देखते मुहल्लो की होली जल उठी।

तू अच्छी तरह जानती थी कि जला हुआ अस्तबल फिर से बनवाया जा सकता है। महल के भग्नावशेष को बनानेवाले फिर से पैदा हो सकते हैं। उजडे हुये मुहल्ले फिर से बसाये जा सकते हैं, लेकिन विशाल पुस्तकालय जिसमे वेद-पुराण, इतिहास, काव्य और अरबी-फारसी की हस्तलिखित प्रतियाँ जिसकी नकल करने के लिये अन्य देशो से विद्वान् आते थे अब कहाँ मिलेगी? इन जले हुये ग्रन्थो के रचयिता कहाँ मिलेगे? यह सोचकर तू पागल हो उठी। तुझे पति और पुत्र का मरना भी कर्म क्षेत्र से विचलित न कर सका। प्राण प्यारे किले का जलना भी न डिगा सका। जो मानस विघ्न बाधाओ में कमल की भाँति खिल उठता था वही पवन से ताड़ित कदली के पत्ते के समान हो गया और तू नादान दुधमुँहे बच्चे की तरह बिलख-बिलख कर रोने लगी। धर्म तेरा प्राण था और धर्म-ग्रथ जीवन। धर्मग्रन्थों को भस्म होते देख तू भी स्वय बारूद मे आग लगा कर भस्म हो जाना चाहती थी, लेकिन धर्म गुरु भोपटकर के मत्र से तुम्हारी प्रज्ञा का कपाट खुला।

तुझे धर्मगुरु के बताये हुये गुप्तमार्ग से निकल कर प्राण बचा लेना पसन्द न था, कायरों की भाँति छिप कर लक्ष्य तक पहुँचना पसन्द न था। तू वीरोचित मार्ग जानती थी उस पर चल भी चुकी थी, इसलिये अर्धरात्रि में गगनचुम्बी अग्नि की लपटो को चीरती हुई सदर फाटक से निकल कर दुश्मन की छाती पर लात रखती हुई कालपी की ओर चल पडी। पीठपर बालक दामोदरराव बँधा हुआ था। सिर पर पूर्वजों का पावन ताज चमचमा रहा था, हाथ मे धर्मगुरु की दी हुई धर्म-रक्षा की पतवार बाल-साथिनी तलवार लपलपा रही थी। पवन को भी गति की शिक्षा देनेवाला चचल अश्व अम्बर में उडा चला जा रहा था।

सुअवसर की परख और जीवन का सार्थकता समझने वाली, धर्म-रक्षा और मातेश्वरी की प्राण-रक्षा के लिये अपनी उमडती जवानी को भस्म करके औषधि बनाने वाली तपस्विनी थी, अरकारी कोरिन आधी रात में रानी के

सदर फाटक से निकल जाने के बाद लक्ष्मीबाई के समान वेश में वैसे ही घोड़े पर सवार होकर फाटक के बीच शत्रु से आ जूझी । अंग्रेज उसको ही रानी समझकर उस पर टूट पड़े अकेली झरकारी की तलवार शत्रु के सहस्रों करवालों मे कब तक चमकती अन्त में अन्तर्हित हो गई ।

तू अगम्य पहाड़ो की चोटियों को लाँघती हुई, घोर जगलों की निविडता को चीरती हुई कालपी की ओर बढ़ी जा रही थी । घोडो के टापों के आघातो से शिला खण्डों की चिनगारी रूपी जिह्वा बाहर निकल पडती थी । केवल जुगनूँ का लघु प्रकाश ही अन्धकारका हृदय बेधता हुआ पथ प्रदर्शक का काम कर रहा था । जगली जन्तु अपनी-अपनी माँदों को छोड बच्चों के साथ भाग-भागकर अन्धकारकी शरण ले रहे थे । पक्षीगण भय से आक्रान्त हो पर फडफडाते हुये अन्धकार मे उडते जा रहे थे । इसी बीच आधे रास्ते में दुष्ट बोकर सेना लेकर सावन की उमड़ती तटिनी मे लघु शिलाखण्ड बनकर, झंझावात के प्रबल झकोरे के सम्मुख अड़ना चाहा, लेकिन तेरी उमडती वीर वाहिनी के सम्मुख शोणित की धारा में बह गया । पौ फटी, आकाश काली चादर फेंक कर मुसकराने लगा । वीरा तू रात भर में सौ मील का मार्ग तय करके कालपी पहुँच गई ।

कालपी यमुना के किनारे एक ओर दृढ किला, तीन ओर परकोटा और चौथी ओर यमुना नदी से घिरा हुआ खासा सुरक्षित नगर था । जब तू वहाँ पहुँची तब राव साहब, नाना साहब का भाई और तात्या तोपे वही मौजूद थे । दूसरे दिन तूने इन लोगों से भेंट की । लोगों ने तुम्हारा दिल खोल कर सत्कार किया । तू सत्कार की भूखी न थी । तेरी आँखों के सामने जननी-जन्मभूमि पराधीनता मे जकड़ी हुई बिलख रही थी । कानों में अनन्त अन्तरिक्ष में रमती हुई कर्णावती हाडा रानी, देवल देवी, ताराबाई प्रभृति क्षत्राणियों की अमर आत्मायें शिक्षा दे रही थीं कि शत्रु के सीने में कटार भोक दो, समराग्नि की लपलपाती विभिषिका को चन्द्र पर्व की पीयूष वर्षिणी चन्द्रिका समझ, कृपाण की धार को कोमल पथ-धूल समझकर अनर्थ के पहाड़ की होली जला दो । तू एक ही दृष्टि में कालपी के गुप्त से गुप्त रहस्य को समझ गई और यह भी जान गई कि रावसाहब के सिपाहियों की स्वतत्रता प्रथमें रोड़े बनेंगे, हुआ भी वही । दीवान खास में सबों ने रावसाहब को ही कालपी के रण का सेना-नायक चुना । उसी समय तू समझ गई कि विजय किसकी होगी और पराजय किसकी ? रण का बिगुल बजा दोनों ओर से शस्त्र प्रहार होने लगा । प्रथम शत्रु का पैर उखड़ता हुआ दिखाई दिया, लेकिन कुशल नायक न होने के कारण

विजय का पन्ना उलट गया। फिर भी तेरे अदम्य उत्साह और घोड़े के पवन में उड़-उड़कर टापों से शत्रुओं के मस्तक को विदीर्ण कर बैरी के मानस को चलदल की भाँति चलायमान कर दिया, लेकिन रावसाहब के नायकत्व में सेना ने इतनी भाँग छान ली थी कि वही होने चला जो दैव को मंजूर था। फिर भी तू यह नही देखना चाहती थी कि पूर्वजों का पावन गेरुआ झण्डा शत्रुओं के पैर के नीचे रौंदा जाय। दोनों हाथों में काल-सर्पिणी सी लपलपाती तलवार लेकर शत्रु के सिर छाँटने लगी और दाँत से घोड़े की लगाम पकड़ कर संचालन करने लगी। क्षण मे ही लाशों का पहाड बन गया, शोणित की सरिता बह चली, पवन भी आहत हो चीत्कार कर उठा, अनन्त में प्राणों का मेला लग गया लेकिन तेरी यह कुर्बानी विधाता को अभी मंजूर न हुई।

सन्ध्या सुन्दरी ने कौतूहलपूर्ण रक्तिम नेत्रों से देश के सिरदानियों को चिर निद्रा में निमग्न देखा। आँसू की धारा श्यामल अंचल पर बह चली। नेत्र के अंचल के धुलने से वह और भी गाढा हो चला। तू भी सन्ध्या देवी की आराधना के लिये थोडी देर ध्यानमग्न हुई। फिर शिविर में प्रवेश किया। इसी बीच गुल मुहम्मद, रघुनाथ सिंह और देशमुख भी आ पहुँचे। उस समय तेरे पास लाल कुर्तीवाले केवल दो सौ सवार रह गये थे। तुझे निराश होकर इन बचे हुये सिरदानियों को साथ ले घोर अन्धकार में विघ्नों की छाती पर लगाम मोड़नी पडी। आँखों के सम्मुख अब केवल ग्वालियर का ही किला दिखाई दे रहा था और मानस में सुरक्षित रण को बनाने का नकशा।

ग्वालियर की उषा ने घूँघट खोला। सामने साकार भवानी को देखकर गद्‌गद् हो उठी। माँग का सुहाग और भी देदीप्यमान हो गया। प्राची ने विहँसकर स्वर्णमय फाटक खोला। भगवान अंशुमाली तेरे दर्शन के लिये प्रेम-नीर में डबडबायी आँखों से आगे बढ़े। उनका प्रबल शत्रु अन्धकार क्षण में लापता हो गया यह तेरे ही पौरुष का प्रताप था। वीर सेनानियों के साथ तू घोडे पर से उतर पड़ी। सिर पर आकाश महत्वाकांक्षायें लिये विहँस रहा था।

दूसरे दिन पौ फटी। पक्षीगण वृक्षों की शाखाओं से भैरवी सुनाकर पृथ्वी पर उतरकर दाना चुँगने लगे। तू भी सखी सुन्दर को साथ ले ग्वालियर के निरीक्षण के लिये आगे बढ़ी। किले से थोड़ी दूर उत्तर-पूर्व मुरार की ओर प्रकृति की गोद में मस्त गाता हुआ सोनरेखा नाला बह रहा था। वृक्षों की सन्वंगी लतायें अपनी कोमल बाहें फैलाकर स्वच्छ चंचल जल के ऊपर आलिंगन का जादू पढ़ रही थी। चंचल वाजि एक ही छलांग में नाले को पार कर उस प्रकृति के दृश्य में पहुँच गया जहाँ दूर्वा का मैदान मस्त लहरा रहा था उसी की

गोद में प्रज्ञा का कपाट खोले हुये छोटी-सी कुटिया विहँस रही थी। सम्मुख काले मृगछाले के ऊपर प्राचीन ऋषियों के प्रतीक बाबा गंगादास ध्यान-मग्न थे। बगल में जल से भरा हुआ कमण्डलु लहरा रहा था। दूसरे पार्श्व में पलास-दण्ड रक्खा हुआ था। उस विशाल ललाट से अपूर्व तेज सूर्य की किरणों को भी हतप्रभ कर रहा था। कुटिया की बगल में कदम्ब के वृक्ष से घोड़े बाँध दिये गये जिनकी टापों की ध्वनि और हिनहिनाहट से तपस्वी की समाधि खुली, रक्तिम नेत्र ऊपर उठे। सामने साकार भवानी को देख एक अनिर्वचनीय आनन्द हृदय में लहराने लगा। तू अपनी प्राण प्यारी सखी के साथ शीतल जल से प्यास बुझा कर तपस्वी के द्वारा दिये हुये आसन पर बैठ गई। बाबा जी भी आतिथ्य सत्कार से निवृत हो आसन पर विराजमान हो गये। तूने प्रश्न किया—

"स्वराज्य कैसे मिलेगा भगवन् ?"

"जैसे मिलता आया है।"

"नहीं समझ सकी प्रभो !" तूने कौतूहलपूर्ण नेत्र से पुन. आज्ञा माँगी।

"त्याग, तपस्या और बलिदान से।"

एक क्षीण मुसकराहट के साथ तूने पुन प्रश्न किया—

"क्या हमलोग अपनी आँखों देख सकेंगी ?"

प्रश्न सुनते ही तपस्वी की मुद्रा और गम्भीर हो गई पुन: सम्बद्ध होकर कहने लगे—"भवानी ! यह मोह कैसा ? कभी इमारत की नीव की ईंट उसके साकार रूप को देखती है। इसी भाँति तेरे लिये भी यह असम्भव है कि स्वातन्त्र्य भवन के साकार रूप को देख सको। तुझे तो स्वातन्त्र्य भवन की नीव की पहली ईंट बननी है जिसके ऊपर सत्य संकल्प, त्याग और बलिदान से आने वाले वीर भव्य भवन का निर्माण करेंगे और उसकी छत्रछाया में देशोत्थान के गीत गावेंगे।" इस उपदेश के सुनते ही रणचण्डी ! तेरी प्रज्ञा का कपाट खुल गया जिसमें आत्म बलिदान की पावन प्रतिमा विहँस उठी और उधर प्राची के आँचल पर गोधूलि भी मुसकरा उठी। साष्टाग दण्डवत् के बाद मुख से निकला—"मैं पुन दर्शन करूँगी प्रभो !" इतना कहकर सखी सुन्दर के साथ घोड़े पर सवार हो किले को लौट आई।

आकाश में विपत्ति के बादल मँडरा रहे थे। विभीषिका अपनी काल-सर्पिणी सी जीभ लपलपा रही थी; लेकिन ग्वालियर वालों को इसकी परवाह न थी। रावसाहब पेशवा के ऐश-आराम की नाटकशाला अब भी दिवाली मना रही थी। भाँग पर भाँग छन रही थी। उधर जनरल रोज की सेना की तैयारी प्रबल वेग से हो रही थी। काल के समान विकराल

मुँह बाये शतघ्नी किले की ओर देख रही थी ? तेरी आँखो मे नीद न थी। हृदय मे सन्तोष और आराम न था। तू जीते जी अपने हाथ के पासे को पलटते न देख सकती थी और यह भी न देख सकती थी कि पूर्वजो का पावन गेरुआ झण्डा दुश्मन के पैरों के नीचे कुचला जाय। तूने अपनी प्यारी सखी मुन्दर से कहा, 'यह मेरा अन्तिम संग्राम है। बाबा गगादास की बात याद है न ?' मुन्दर ने स्वीकार किया। १७ जून को ब्रिगेडियर स्मिथ ने रण का बिगुल बजाया। झाँसी के किले की तोपो ने भी जयघोष किया। दोनो ओर से युद्ध प्रारम्भ हो गया। गोले का जवाब गोले देने लगे। बात की बात मे आकाश मे धूल और धुएँ छा गये। प्राणो का मेला लग गया। तू भी गोलन्दाजो को सावधान करती हुई चचल वाजि पर सवार हो सखी मुन्दर को साथ ले प्राणो की बाजी लगा रही थी। लोहो की रगड से चिनगारियाँ छिटक रही थी। घोडो के रेल-पेल और तोपो की क्रोधाग्नि से उस दिन अग्रेजो की पराजय हुई और सैनिको को साथ ले शिविर को लौट आया। सन्ध्या नीरवता के कन्धे का अवलम्बन लेती हुई पृथ्वी पर उतरने लगी।

तुझे रात भर नीद न आई। अपने पाँचो सरदारो के साथ रण का नकशा बनाती रह गई। उधर अम्बर की मत्रणा समाप्त हुई, और इधर तेरी। सरदारो ने खा-पीकर पीठ पर पानी का थैला बाँधा। तू केवल एक गिलास शर्बत ही पी पाई थी कि इसी बीच पुन रण के बाजे बज उठे। रघुनाथ सिंह ने मुन्दर को सचेत किया कि आज रानी का अन्तिम युद्ध है इसलिये एक मिनट के लिये भी साथ न छोड़ना। मुन्दर ने स्वीकार किया। तूने रामचन्द्र देशमुख को समझाया कि आज मेरा यह अन्तिम सग्राम है इसलिये बालक दामोदरराव को अपनी पीठ पर बाँधो, अगर मैं मारी जाऊँ तो इसको सुरक्षित दक्षिण भारत मे पहुँचा देना। कुँवर रघुनाथसिंह ! एक बात और कहना है कि विधर्मी मेरे शरीर को छूने न पावे। इसी बीच मुन्दर अस्तबल से घोड़ा लेकर आ पहुँची। घोड़े को देखते ही तूने बता दिया कि यह अड़ियल है। मुन्दर हतप्रभ सी खड़ी रह गई। दूसरा घोड़ा लाने का अब समय भी न था, इसलिये रानी ने उसे ही अपने अन्तिम सग्राम का साथी बनाया। इसी बीच दुश्मन के गोले गरजने लगे और कुछ न कह सकी। नये घोडे पर सवार होकर युद्ध की ओर चल दी। रास्ते मे घोड़ा अड़ा लेकिन पुचकारने से पुनः आगे बढ़ा और शत्रु के सम्मुख जा पहुँचा। रात भर में शत्रु ने काफी तैयारी कर ली थी। तू भूखी सिंहनी की भाँति शत्रु सेना पर टूट पड़ी। बात की बात में मुण्डों का पहाड़ बन गया। भवानी ! लाल कुर्ती वाले सवार जी-जान से तेरी

रक्षा मे लग्न थे और शत्रुओ की सख्या कम कर रहे थे। तुझे एक हाथ की तलवार के युद्ध से सन्तोष न था इसलिये दोनो हाथ से तलवार चलाने लगी और दाँत से घोडे का लगाम सँभालती थी। उधर रामचन्द्र देशमुख बचा-बचाकर लड रहा था क्योकि उसे महारानी की सौपी हुई थाती की रक्षा भी तो करनी थी। सारा दिन घोड़ोंकी टापो से सिरदारियो के सिरो को फोडते रहे। अग्रेज बिल्कुल घबडा गये थे। उस दिन भी उनकी पराजय ही होने वाली थी कि एक सगीनवाले की सगीन रानी की छाती के नीचे लगी। खून का फौव्वारा फूट चला। इसकी भी तुझे परवाह न थी तुझे तो एक सच्ची लगन थी स्वतत्रता प्राप्ति की। बात की बात मे तूने उस सगीनदार को मौत के घाट उतार दिया। अब दुश्मन केवल आठ दस ही बच रहे थे जो तेरे पीछे-पीछे लगे हुये थे। रघुनाथ सिह समीप थे, तूने उन्हे सचेत किया कि अग्रेज मेरे शरीर को छूने न पावे।

एक अग्रेज सैनिक की गोली उसके सीने मे लगी। तुम्हारा जयजयकार करती हुई वह वही ढेर हो गई। शीघ्र ही रघुनाथ सिह ने उसकी शून्य देह को साफे से अपनी पीठ पर बाँधा। तेरे प्रसन्न मुख से निकला 'भारतीय वीरा का मरने का यही स्थान है।'

तूने घोडे को आगे बढाने का लाखो प्रयत्न किया लेकिन सब विफल हुआ। वह दो पैरो पर खडा हो गया। एक पग भी आगे न बढा। इसी बीच शेष अग्रेज सवार भी आ पहुँचे। एक गोरे ने तेरे ऊपर पिस्तौल का वार किया, निशाना अचूक था। तेरी बाईं जाँघ गोली के आघात से बेकार हो गई। उस गोली चलाने वाले को तूने बात की बात मे सुला दिया। फिर घोडे को एँड लगाई, लेकिन फिर भी प्रयास विफल रहा। अब केवल दो अग्रेज सैनिक शेष रह गये थे। वे सब और समीप चले आये। इसी बीच तूने एक हाथ की तलवार फेक घोडे की अयाल पकडी और पुन वीरासन मे घोडे पर बैठ गई। एक हाथ की तलवार से युद्ध करने लगी। एक गोरे सैनिक ने छिपकर पीछे से तेरे सिर पर तलवार का वार किया, जिससे सिर का दायाँ हिस्सा और दाई आँख छटककर गिर पडी। तिस पर भी तूने अपनी बाल सगिनी तलवार से उनको पृथ्वी पर सुला दिया। इसके बाद दोनो विधर्मियो की छाती पर लात रखकर खडी हुई जैसे शुम्भ-निशुम्भ दैत्यो की छाती पर रणचण्डी खडी हो। मुख से निकला 'भारत माता की जय।' इतना कहते-कहते बाल सखी तलवार हाथ से गिर पडी और तू आप भी मूछित हो गई।

रघुनाथ सिह और देशमुख ने तेरे मूछित शरीर को सँभाला। अपने घोडे पर बैठ ाकर उस ओर ले चले जहाँ मत्र फूँकने वाले बाबा गगादास की कुटी

थी। कुटी के सम्मुख पहुँचकर रघुनाथ सिंह ने तुझे रेशम के साफे पर सुला-दिया और बगल में बाल सखी मुन्दर को। तेरी साँस अभी धीरे-धीरे चल रही थी। बाबा जी कुटी से बाहर निकले तो देखा कि स्वातंत्र्य भवन की नीव की ईंट माता के अचल पर पड़ी हुई है। पास जाकर देखा अभी तुझमे कुछ जीवन था। कुटी से कमण्डलु लाकर मुँह में गगाजल छोडा। नेत्र खुले प्रेम और सन्तोष के आँसू छाये हुये थे, मुँह खुला, केवल इतना ही शब्द साफ-साफ सुनाई पडा—

'नैनं दहति पावक !' और तू सर्वदा के लिये मौन हो गई। तपस्वी ने अपनी निधि कुटिया को उजाडकर उसकी लकडी से तुम्हारी और तुम्हारी सखी मुन्दर की चिता बनायी।

माँ ! पावक ने प्रसन्नता और सन्तोष के साथ तुझे और तेरी सखी मुन्दर को गोद मे बैठा लिया जिसके एक-एक स्फुलिंग मे वीराङ्गनाओ का पावन चरित्र चमचमा रहा था। बालक दामोदरराव को लेकर रामचन्द्र देशमुख दक्षिण भारत चले गये।

—श्यामनारायण प्रसाद

झाँसी की रानी

मंगलाचरण

जो है आनन्दन महाशक्ति
जिससे है रक्षित दिग्दिगन्त।
उद्भव - विकास - आनन्द-धाम
जिससे धरणी का आदि-अन्त,

जग के आदान-प्रदानों में
जिसकी गरिमा है लाल-लाल,
जो अम्बर से भूतल तक है
सुखदायक गौरवमय विशाल

मधु - कैटभ का जीवन पीकर
जिसकी आँखें हैं रक्तवर्ण,
जिसके भय से डगमग हिमनग
वसुधा का कम्पित पर्ण-पर्ण,

जिसके पवि-सम पद के नीचे
दब स्वर्ग सिधारा था निशुम्भ,
होते ही जिसकी भृकुटि वक्र
शोणित से भरता कुम्भ-कुम्भ,

है महाजलधि का शंकित उर
मुँह तक आ-जाता काँप-काँप,
शिव-शिव भजते ग्रह, रवि, उडुपति
नभ में पद रखते नाप-नाप,

सुर-असुर सभी कम्पित कर से
देने लगते हैं अर्घ्य-दान,
अवनी के अंचल पर क्षण में
होने लगता है प्रलय गान,

अम्बर में लखकर बिजली सी
जिसकी चमचम चंचल कटार,
हो उठता महा महीधर का
उर भी अति कम्पित एक बार,

घनमय अम्बर भी सिहर-सिहर
भजने लगता है राम-राम,
वसुधा दिग्दिक् से है कहती
हे अवध-धाम-अभिराम राम !

डगमग-डगमग धरणी करती
होते रवि के घोड़े सशंक,
अपने पथ से विचलित होकर
शंकित चलते वे चलते बंक,

दृढ़ त्रस्त कमठ दुःसह दुख से
व्याकुल होकर करता थर-थर,
रसहीन मरुस्थल के उर से
बह चलता वारि विहँस झर-झर,

लिख रहा पवन रंजित पट पर
है घूम-घूम . जिसका सुनाम,
उस महाशक्ति के चरणों में
शत शत प्रणाम, शत शत प्रणाम ॥

ज्योति

अहोरात्र में प्रकृति वधू से
मिलकर हँसनेवाली कौन ?
शिशिर कणों की विमल उषा में
जगमग करनेवाली कौन ?

निर्जन में वन की रानी को
नित्य जगानेवाली कौन ?
महाजलधि के शीतल उर में
आग लगानेवाली कौन ?

चन्द्र-सूर्य जिसके प्रहरी हैं
मन को हरनेवाली कौन ?
उच्च हिमालय के मस्तक पर
नित्य विचरनेवाली कौन ?

चन्द्र - पर्व में विमल चाँदनी
बनकर आनेवाली कौन ?
बन - उपवन में, सुमन-सुमन में
मधु बरसानेवाली कौन ?

निश की अलसाई पलकों को
हँसकर धोनेवाली कौन ?
सपनों में सोई वसुधा की
निद्रा खोनेवाली कौन ?

सुर-असुर सभी कम्पित कर से
देने लगते हैं अर्घ्य-दान,
अवनी के अंचल पर क्षण में
होने लगता है प्रलय गान,

अम्बर में लखकर बिजली सी
जिसकी चमचम चंचल कटार,
हो उठता महा महीधर का
उर भी अति कम्पित एक बार,

घनमय अम्बर भी सिहर-सिहर
भजने लगता है राम-राम,
वसुधा दिग्दिक् से है कहती
हे अवध-धाम-अभिराम राम !

डगमग-डगमग धरणी करती
होते रवि के घोड़े सशंक,
अपने पथ से विचलित होकर
शंकित चलते वे चलते बंक,

दृढ़ त्रस्त कमठ दुःसह दुख से
व्याकुल होकर करता थर-थर,
रसहीन मरुस्थल के उर से
बह चलता वारि विहँस झर-झर,

लिख रहा पवन रंजित पट पर
है घूम-घूम . जिसका सुनाम,
उस महाशक्ति के चरणों में
शत शत प्रणाम, शत शत प्रणाम ॥

ज्योति

अहोरात्र में प्रकृति वधू से
मिलकर हँसनेवाली कौन ?
शिशिर कणों की विमल उषा में
जगमग करनेवाली कौन ?

निर्जन में वन की रानी को
नित्य जगानेवाली कौन ?
महाजलधि के शीतल उर में
आग लगानेवाली कौन ?

चन्द्र-सूर्य जिसके प्रहरी हैं
मन को हरनेवाली कौन ?
उच्च हिमालय के मस्तक पर
नित्य विचरनेवाली कौन ?

चन्द्र - पर्व में विमल चाँदनी
बनकर आनेवाली कौन ?
बन - उपवन में, सुमन-सुमन में
मधु बरसानेवाली कौन ?

निश की अलसाई पलकों को
हँसकर धोनेवाली कौन ?
सपनों में सोई वसुधा की
निद्रा खोनेवाली कौन ?

जग में निर्गुण-सगुण-रूप में
छिपकर आनेवाली कौन ?
सुगम-अगम के गूढ़ तत्त्व को
विहँस बतानेवाली कौन ?

तृषित तितलियों की पाँखों को
कर से रँगनेवाली कौन ?
महाप्रलय में भी हँस-हँसकर
सुख से जगनेवाली कौन ?

मसि-कागज के अमल भवन में
दीप जलानेवाली कौन ?
मायामय रजनी में कवि को
पथ दिखलानेवाली कौन ?

जिसे खोजकर हार गया जग
कहता वह मतवाली कौन ?
विश्व - मोहिनी - रूपा बाला
मायामय छविवाली कौन ?

सृष्टि-प्रलय - पश्चात् अवनि पर
एक वही है जो है मौन।
निराकार-साकार रूप में
राज रही है होकर मौन ॥

वही जगत् का आदि-अन्त बन
जग-रचना करती है मौन।
प्रथम गगन को फिर भूतल को
तेजोमय करती है मौन ॥

बुद्धि-पक्ष से वही निकलकर
हृदय-पक्ष में होती मौन।
जग में फिर आनन्दवाद को
फैलाती है होकर मौन॥

वही सघन-घन में चपला है
उर में आत्म रूप है मौन।
सकल विश्व को नित्य जगाती
स्वयं बनी रहती है मौन॥

वही राम है, वही कृष्ण है,
वही ब्रह्म है जो है मौन।
वही शब्द हैं, वही अर्थ है,
वही काव्य है जो है मौन॥

प्रेम वही है, राग वही है,
त्याग वही है जो है मौन।
ज्ञान वही है, सत्य वही है,
शिवं वही है जो है मौन॥

नाम ज्योति सुन्दरतामय है,
कर्णधार है होकर मौन।
धरणी, गगन, अनन्त दिशा को
भासमान करती है मौन॥

—❀—

परिचय

झाँसी की रानी

लेकर स्वतन्त्रता के ध्वज को
निर्भय फहरानेवाली थी।
रणचण्डी के क्रोधानल - सम
बनकर लहरानेवाली थी॥

वह राज-योग की भस्म लगा
नित अलख जगानेवाली थी।
रणभेरी के रव में स्वर भर
वह वीर बनानेवाली थी॥

'तुम जगो वीर बुन्देलखण्ड'
यह मन्त्र फूँकनेवाली थी।
निज मातृ-भूमि के अर्चन में
वह नहीं चूकनेवाली थी॥

निद्रित झाँसी के कण-कण में
नव शक्ति जगानेवाली थी।
इस वीर - भूमि की पूजा में
सर्वस्व चढ़ानेवाली थी॥

वह महामृत्यु बनकर अरि के
सिर पर मँडरानेवाली थी।
जीवन पी-पीकर अरि-कुल को
हर-लोक पठानेवाली थी॥

जिसने जीवन के संकट की
लपटों में भी हँसना सीखा।
असि-जिह्वा लेकर नागिन की
विपदाओं को डसना सीखा॥

निज प्राण हथेली पर लेकर
वन, सरिता, अगम पहाड़ों में।
वह जगा रही थी नई शक्ति
सब सोनेवाले हाड़ों में॥

ले समर-सिन्धु कर-गण्डुलि पर
वह रखकर पीनेवाली थी।
ले प्रेम-तन्तु स्वातन्त्र्य वस्त्र
निज कर से सीनेवाली थी॥

रानी का रण-हुङ्कार प्रबल
नभ में है अब भी गूँज रहा।
रानी का जय-जयकार सतत
भारत-मानस में गूँज रहा॥

रानी अब भी है डोल रही
कण-कण में नूतन शक्ति बनी।
अब भी वह देवी बोल रही
इस विश्व-हृदय में भक्ति बनी॥

नश्वर तन से है दूर; किन्तु
जिह्वा पर अमर कहानी है।
स्वातन्त्र्य-वत्स कहता रहता
माँ झाँसीवाली रानी है॥

(६)

जिसने सत्तावन में बलि दी
उसकी ही कथा सुनानी है।
जिसके जीवन के तत्वों की
हम सबको स्मरण कहानी है॥

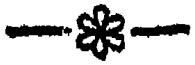

नारी-सेना

जिसको था अब तक समझ रहा
जग वैभव में पलनेवाली।
नव-रूप-कुसुम की माला बन
मन-मन्दिर में चढ़नेवाली॥

वह आज धरा पर विहँस रही
है फूल बनी अंगारों में।
चढ़ रही शत्रु की छाती पर
बरछी, भालों, करवालों में॥

वह एक बनी है गरुड सदृश
तक्षक-दल की फुफकारों में।
वह अचल बनी है अचल खड़ी
अरि-सेना की ललकारों में॥

पद-पायल की ध्वनि गूँज रही
हथियारों की झनकारों में।
मुख सौ-सौ रवि-सम दमक रहा
रिपु-दल के तीखे वारों में॥

वह बार-बार कहती-बढ़ती
'तलवारों की परवाह नहीं।'
है स्वतन्त्रता की एक चाह
अब और दूसरी चाह नहीं॥

बस एक पन्थ है चढ़ने का
अरि-दल की विकट कटारों में।
बस एक दाह है उठी हुई
तलवारों में तलवारों में॥

उद्दिष्ट भूमि वह दूर नहीं
जिस पर हँस रक्त चढ़ाना है।
अब वह दैवत है दूर नहीं
जिस पर हँस प्राण चढ़ाना है॥

जिस पर चढ़कर रणधीरों ने
नश्वर जग में मरना सीखा।
भारत के वीर सपूतों ने
रण-सिन्धु त्वरित तरना सीखा॥

है जन्म-भूमि स्वातन्त्र्य जहाँ
बस चलकर वहीं समाना है।
निज रूप-कुसुम की माला से
माँ का शृङ्गार सजाना है॥

यदि वन, नद, नदी पहाड़ों में
स्वातन्त्र्य-सौख्य को पाना है।
तो मेरे लिये वही प्रतिपल
प्रासादों सा सुख-बाना है॥

बस एक प्रतिज्ञा है मेरी,
माता को मुक्त बनाऊँगी।
अम्बर के मस्तक पर सहर्ष
नव कीर्ति-ध्वजा फहराऊँगी॥

(१२)

विप्लव के गायन गा-गाकर
जग को यह पाठ पढ़ा दूँगी।
यदि समय कहेगा तो हँसकर
मैं प्राण-प्रसून चढ़ा दूँगी॥

तलवार

बचा लो हृदय ! बचा लो शीश !
धरा पर होता उल्कापात ।
अरे ! यह तो विष-निधि की स्वच्छ
प्रभा - सम चमक रहा अहिजात ॥

अभी यह शुद्ध चाँदनी - तुल्य,
पलक गिरते होती है काल ।
एक क्षण ग्रीवा को यह चूम
त्वरित होती किसलय सम लाल ॥

अलौकिक इसका सुन्दर वेष
प्रबल घोड़े पर है आरूढ़ ।
स्वयं झाँसी की रानी बैठ
सँभाले है वह वल्गा गूढ़ ॥

पवन को चीर चमकती हुई
गगन को लेती है यह चाट ।
रुधिर में करती हँस-हँस स्नान
मुण्ड से देती है भू पाट ॥

कबन्धों का रचकर सोपान
चढ़ी जाती है नभ की ओर ।
प्रभो ! इस प्रलय - रूप का यहाँ
नहीं है कहीं ठिकाना - छोर ॥

अभी थी इधर, इधर अब नहीं
किधर वह गई पवन को चीर ?
अरे ! वह देख, उधर सिर काट
दूर कर रही विघ्न की भीड़ ॥

न जाने इसकी कितनी प्यास
जीभ में कितना भारी ताप।
कि जीवन जिसका करके स्पर्श
त्वरित बन जाता केवल भाप ॥

दिवस, निश, प्रहर, घटी, विनिमेष
सदा जगती रहती यह प्यास।
जिसे शीतल करने के हेतु
हो रहा अरि-उर-सिन्धु हताश ॥

धरा पर स्वयं हुआ अवतीर्ण
आज त्रेता का लंका-दाह।
प्रबल जिसके पानिप के बीच
नहीं मिलती प्राणों को राह ॥

इसी से अरि-मुण्डों के बीच
ढूँढ़ते प्राण शान्तिमय स्वर्ग।
कभी लुंठित सिर हैं मुँह खोल
पूछते ईश ! कहाँ अपवर्ग ?

देख यह इन्द्रजाल का खेल
विकल होते हैं दैवी दूत।
सोचते किस पथ से ले जायँ
स्वर्ग को माँ के वीर सपूत ॥

(१५)

असंशय यह है माया-रूप
यहाँ आया छलने संसार ।
अरे ! क्यों भूल रहा रे विश्व !
स्पष्ट यह रानी की तलवार ॥

सुन्दर और मुन्दर

स्वातन्त्र्य - भवन का दीपक
अविरल अविराम जलेगा ।
माँ के आँचल पर निर्मल
आलोक नवल लहरेगा ॥

विघ्नों की तिमिर - घटा यदि
चाहेगी उसे छिपाना,
अरि-दल पतंग बनकर यदि
चाहेगा उसे बुझाना,

आँधी बनकर रण में तो
मै तम-घन-नाश करूँगी ।
ज्योतिर्मय अवनी का मैं
रच-रच शृङ्गार करूँगी ॥

रानी से भी पहले मैं
यह दीप-हृदय भर दूँगी ।
जीवन की ज्योति चढ़ाकर
नव विमल प्रकाश करूँगी ॥

पूजा की है यह वेला
अरि - प्राण - प्रसून चढ़ेगा ।
नश्वर तक की आहुति से
माँ का सम्मान बढ़ेगा ॥

आओ असि ! बाल सखी हो
नहला दो अब शोणित से।
इस युद्ध - पर्व पर नूतन
शृंगार करो लोहित से ॥

यह कर्णवती का स्थल है
पन्ना का है रखवाला।
हाड़ारानी का हँसता
है यहाँ सतीत्व निराला ॥

उन सतियाँ की है यह भू
जो पति का साज सजाती।
निर्भय कर में असि देकर
संमर में विहँस पठाती ॥

माताओं ने इस भू का
हँस - हँस सम्मान किया है।
प्राणों से प्यारे सुत को
इस पर बलिदान किया है ॥

उनकी ही शेष कहानी
यह झाँसी की रानी है।
उनकी गति इस जगती में
अरि - हरणी पहचानी है ॥

इस पर ही सदा जगी है
सतियों की जौहर ज्वाला।
इस पर ही विहँस चढ़ी थी
नारीत्व - कुसुम की माला ॥

(१८)

देखूँगी रानी पर अब
किस अरि की आँख उठेगी।
सुन्दर - मुन्दर की असि से
उसकी सब साख मिटेगी॥

घोड़ा

जिसने रानी की पूजा की
यह वही वाजि मतवाला है।
स्वामी से पहले वेदी पर
निज प्राण चढ़ानेवाला है॥

डटकर जो अरि की सेना पर
अन्तक बन - बनकर लहराया।
जिसने सत्तावन का झण्डा
नभ के मस्तक पर फहराया॥

जिसने रिपु - दल में भय भरकर
हँस - हँस रण - सागर पार किया।
सत्वर माँ की परवशता का
बन्धन था जिसने तार किया॥

जो सिंह - सदृश बन जाता था
मद - मस्त गजों की चालों में।
वह पवन सदृश लहराता था
बरछी, भालों, करवालों में॥

वह शत्रु नगों के शिखरों को
क्षण में कण - कण कर देता था।
रानी के पथ की बाधाएँ
हँसता - हँसता हर लेता था॥

वह अरि-दल से कहता बढ़कर
मेरी है विजय लिखो झुककर।
यदि लड़ना हो तो लड़ ही लो
मेरी टापों से तुम आकर॥

यह कह-कहकर हर-हर गति से
रानी को ले लहराता था।
मिलता न समीरण को पथ था
हय-चालों मे रुँध जाता था॥

फिर कौशल से मोहित होकर
हय के पीछे चल देता था।
मानो रानी के घोड़े से
गति की शिक्षा वह लेता था॥

तन से शोणित के निर्झर भी
झर-झर-झर-झर-झर झरते थे।
मारुत में चल कौशेय बाल
फर-फर-फर-फर-फर करते थे॥

घावों की चिन्ता उसे नहीं
वह बन्धन-मुक्त निराला था।
रानी का था वह प्राण; किन्तु
स्वातन्त्र्य-भाव - मतवाला था॥

रानी की विमल कहानी में
उसकी भी अमर कहानी है।
रानी की अनमिट गाथा में
उनकी सक्रियता मानी है॥

झाँसी का दुर्ग

है यही दुर्ग उस रानी का
जो कण-कण में है रमी हुई।
हो चकित गगन से पूछ रही
संगर में क्या थी कमी हुई?

दुर्जेय दुर्ग है आज शान्त
धीरे-धीरे है बोल रहा।
जिसकी ऐसी गति देख-देख
शंकर का आसन डोल रहा॥

रव यही निकलता है गढ़ से
पूजन कर लो उस रानी का।
मेरी छाती पर धधक रहा
है चरण-चिह्न सिर-दानी का॥

मेरे कण-कण में रानी के
हँसते स्वदेश के प्यार छिपे।
माँ-बहनों के उद्‌गार छिपे
असि-नागिन के फूत्कार छिपे॥

मेरी क्रोधानल-ज्वाला से
दिनभर रवि तपता आता है।
मुझमें रानी का अमल नाम
'जय काली' भजता आता है॥

है चाह न अक्षत-फूलों की
है चाह नहीं जलपानों की।
मुझको तो स्मृति फिर-फिर आती
माँ-बहनों के सम्मानों की॥

मेरे उर में है धधक रही
वह ज्वाला सती-भवानी की।
मुझको है स्मृति माताओं की,
उनकी आँखों के पानी की॥

मेरे कण-कण में गूँज रहा
है रजपूती अभिमान अभी।
झाला का जीवन-त्याग अमल
गोरा का अविरल गान अभी॥

झाँसी! तुमको जगना होगा
कुछ वीर-कथा कहनी होगी।
हँस बोलो तुम मेवाड-वीर!
कुछ सती व्यथा कहनी होगी॥

जागो हे चारो धाम! पुनः
जागो हे त्याग तपस्वी के!
जागो हे क्षत्रिय के जौहर
जागो आदर्श मनस्वी के!

मैं चला आ रहा हूँ युग से
माँ-बहनों का सिन्दूर लिए।
हँस-हँस पति-सँग दावानल में
सोई सतियों की राख लिए॥

(२३)

हे समय ! बता कब आवेगी
भूतल की नई जवानी अब ?
हे अम्बर ! बता भुजंगिनि ले
अब आवेगी महरानी कब ?

रानी का उद्बोधन

खोलो द्वार सजग प्रहरी तुम ! हे युग की असि ! जाग उठो अब
सोते हो तो जाग उठो। मौन सुहागिन ! जाग उठो।
हे स्वतन्त्रता के विलास तुम जिसके डसने मे विष - लहरें
जाग उठो, हँस जाग उठो ॥ प्यासी नागिन वह जाग उठो ॥

जाग उठो हे शक्तिदायिनी !
माँ रुद्राणी ! जाग उठो।
जाग उठो हे पूज्य तपस्विनि !
माँ कल्याणी ! जाग उठो ॥

जा उठो माँ सिद्धिदायिनी ! जागो जौहर की ज्वाला में
दुर्ग-विनाशिनि जाग उठो। रमी देवियों जाग उठो।
जाग उठो माँ शैल - नन्दिनी ! माला लेकर फिर सतीत्व की
शिवा भवानी ! जाग उठो ॥ सोई संतियो ! जाग उठो ॥

जाग उठो माँ सिह वाहिनी !
विश्वकारिणी ! जाग उठो।
दक्ष-सुता ! ईश्वरी ! अपर्णा !
विघ्नहारिणी ! जाग उठो ॥

जाग उठो हे विन्ध्यवासिनी ! कोमल बाहों में बल भरकर
उमा ! भवानी ! जाग उठो। उर में भारत-प्यार भरो।
जाग उठो पतिभक्ता ! देवी ! सत्य - मार्ग तुम मुझे बताकर
अम्बा ! माया ! जाग उठो ॥ यह सेवा स्वीकार करो ॥

पहली हुंकार

बीते युग की है बात; किन्तु
इसको ही आज सुनाना है।
इस वीर - मंत्र से भारत के
कण-कण को आज जगाना है।

सो रही राख में सब गति-मति
जर्जर हो रही जवानी है।
उसकी औषधि केवल जग में
रानी की अमर - कहानी है॥

रो रही आज है आर्य-भूमि
सो रहा आज गुरुद्वारा है।
इस पुण्य - भूमि के गौरव की
गाथा ही एक सहारा है॥

रो-रो कहते अपनी विपदा
सागर से चारो धाम विकल।
गिरिराज-दृगों से गरम अश्रु,
सरिताओं में बहते अविरल॥

इसलिये वीर - शोणित - रंजित
विजय-ध्वज फिर फहराना है।
मुण्डों की सीढ़ी बना-बना
अम्बर तक इसे उठाना है॥

उर के शोणित से लिखा हुआ
माँ का आख्यान सुनाना है।
कोने-कोने में अवनी के
पूर्वज का मन्त्र पढ़ाना है॥

पाठक! हो जाओ सावधान
रानी का मंत्र सुनाना है।
मानस की पावन मधु-माला
चरणों पर आज चढ़ाना है॥

हो गई यामिनी थी पीली
धरणी शृंगार सजाए थी।
झिलमिल मोती के हारों में
नूतन अनुभाव छिपाए थी॥

हँसकर सर-सरिता के मानस
उर में उद्‌गार जगाते थे।
पंछी नीडों में बैठ-बैठ
प्रभु का सुख से यश गाते थे॥

सपनों का राज्य सलोना था
मन का उन्माद निखरता था।
वसुधा के अंचल पर निशि भर
मानव का भाग्य बिखरता था॥

निशि भर पंकज के मानस में
बन्दी मधुकर • अकुलाते थे।
डाली पर बैठ भुजंगे भी
ठाकुर-ठाकुर जी गाते थे॥

सपनों के रंजित उपवन में
दो प्रणयी सुख से सोते थे।
कामना-बीज वे विहँस-विहँस
नव भाव क्षेत्र में बोते थे।

मनमाना मन था बिचर रहा
चेतना क्लान्त हो सोई थी।
उस माया की छाया में भी
आशा सी तरुणी कोई थी॥

मंगलमय चाहों सी लम्बी
उसकी बेणी थी झूम रही।
माता के स्नेह सदृश झुककर
दोनों को वह थी चूम रही॥

उसके रक्तिम कर-पल्लव में
कल्पना सदृश कोमलता थी।
मधुमयी मृगी सी आँखों में
योगी के मन सी स्थिरता थी॥

चमचम हिम-नग पर सोई थी
स्वच्छन्द भाव से गाती थी।
वह कभी विलासों पर सोकर
मदमाती सी बल खाती थी॥

दिन में रवि के कर पर चढ़कर
पृथ्वी पर आती जाती थी।
निशि में वृन्दारक के सँग-सँग
वह स्वर्गलोक हो आती थी॥

वह कभी तारिका से मिलकर
कुछ मन्द-मन्द मुसकाती थी।
योगी बन नभ की गंगा में
वह विधु के साथ नहाती थी।

वह सरल बालिका थी उस पर
कोई अधिकार न पाता था।
उसका वह निश्चल तेज-पुञ्ज
यम के उर पर घहराता था॥

कहते स्वतन्त्रता भी उसको
जग में वह एक निराली है।
सरिता, निर्झर, रत्नाकर के
कलरव में रमनेवाली है॥

सच्चे मानस की छाया में
माया से परे विहँसती जो।
सौन्दर्य-रूप में रमी हुई
लज्जा के साथ गरजती जो॥

भावना-सदृश कोमलता में
धीरे-धीरे सिमटी आती।
माधव के सुखमय शासन में
लाली बनकर लिपटी आती॥

आँखें थी दोनों लाल-लाल
वह मन्द-मन्द मुसकाती थी।
चमचम तलवार दिखाकर वह
अन्तक को भी थर्राती थी॥

वह मस्त सिंह पर बैठी थी
मतवाली खप्परवाली थी।
शोणित भर-भरकर तनती थी
दुर्गा थी, रण - मतवाली थी।

ज्यों धर्म-कर्म के सम्पुट में
जीवन पलकर मोती होता।
लावण्यमयी सित आभा में
नित सत्य-रूप भासित होता।

उस सत्य - रूप को चूम-चूम
पीयूष-धार बहती रहती।
होती उसमें अनहद ध्वनि नित
रागिनी मधुर बजती रहती॥

वैसे नभ-धरणी सम्पुट में
नव स्फटिक शिला मुसकाती थी।
उसको छूकर जल की धारा
कल-कल ध्वनि में लहराती थी॥

उस स्वच्छ शिला पर स्वतन्त्रता
बैठी ही दुर्गा से बोली।
धीरे - धीरे भारत माँ की
दुख-द्वन्द्व भरी झोली खोली॥

हे आली! चलो चलें भू-पर
रजपूती शान बचानी है।
तापस - बाला की सुखद कथा
जन-जन को अभी सुनानी है॥

वह स्फटिक शिला आलोकित हो
हँस पड़ी ब्रह्म की माया सी।
फट गई तमिस्रा अनायास
उस चन्द्र - प्रभा की काया सी॥

दो शक्ति चमक कर एक हुई
नभ की आँखें चमचमा उठीं।
वे दुग्ध धवल सुर - सरिताएँ
करवट बदले मुसकरा उठीं॥

चमचम अम्बर भी चमक उठा
वह एक शक्ति सत्वर बोली।
सुप्तावस्था में दम्पति की
आशा की झोली थी खोली॥

हे अबले ! हो न हताश अभी
दुर्दिन में हँसती आशा है।
चंचल जलनिधि की लहरों को
व्याकुल कर रही पिपासा है॥

मैं भी पृथ्वी पर आऊँगी
जन-जन में ज्योति जगाऊँगी।
अबला को सबला बना-बना
पावन - आदर्श दिखाऊँगी॥

घन-प्रलय - सदृश फहराऊँगी
दावाग्नि समान जला दूँगी।
माता की लाज बचाने में
अपना सर्वस्व लुटा दूँगी॥

कैलासाचल के कण-कण को
अंगार सदृश धधकाऊँगी।
उस पर निर्ममता को क्षण में
मैं भस्मीभूत बनाऊँगी॥

भारत धरणी की ईति-भीति
दावाग्नि समान जला दूँगी।
फिर लज्जा की शुचिता - धारा
भूतल पर मैं लहरा दूँगी॥

माता! उर में मत करो शोक
तुमको मैं शीश नवाती हूँ।
अपनी हँसती इच्छाओं की
मैं माला तुम्हें चढ़ाती हूँ॥

हो गई हमारी जननी तुम
जगती - तल भी पावन होगा।
नारी-जीवन के आतप में
हँसता विजयी सावन होगा॥

लेकर सित घोड़े पर निज असि
चमकी वह दैवी बाला सी।
नव - दिव्य - प्रभा बन कौंध गई
घन में बिजली की माला सी॥

जग गए युगल प्रणयी सुख से
मानवता बाहु पसार मिली।
दुर्गा - स्वतन्त्रता भूतल पर
आती है, यह नव धार मिली॥

वह विप्र - सुता निज प्रिय पति से
मीठी वाणी में बोल उठी।
मानस - सरसी की लहरों में
थी भाव - सुधा - सी घोल उठी॥

"कौतूहल का नव सिन्धु नाथ!
मानस में आज उमड़ता है।
प्रातः का मंजुल स्वप्न अभी
रह - रहकर विहँस घुमड़ता है॥

उसकी नव छाया अभी सतत
आँखों में चित्र बनाती है।
मँजधार पड़ी तरणी की वह
पतवार बनी लहराती है॥

वह नव स्वर्णिम वरदान अभी
सावन बनकर लहराता है।
मेरे भावी की माया पर
वह विजय - केतु फहराता है॥

वह मूर्ति मुझे ऐसी लगती
मानों भीतर मुसकाती हो।
अपने उर के ताने बाने
मेरे उर में बुन जाती हो॥"

कह रही कथा मधुमय – स्वर में
सुनते थे मोरोपन्त विहँस।
जैसे नीरव में सरिता से
सुनता उडुपति सुख-गान - सुयश॥

पावन वसन्त में सौरभ से
मिलकर कलियाँ मुसकाती ज्यों,
चंचल - मद-मस्त - हवाओं से
मिल हरियाली लहराती ज्यों,

उत्ताल - तरंगें विहँस - विहँस
मंगलमय - पाठ पढ़ाती ज्यों,
सतरंगी - दुनियाँ बना - मिटा
उत्थान - पतन बतलाती ज्यों,

जैसे मुसकाती गोधूली
नीरद पर चित्र बनाती है,
आलोकमयी चंचल - किरणें
दुख-सुख सम भाव बताती हैं,

वैसे ही पति की सन्निधि में
वह अबला भी हँस झूम उठी।
उस वंशहीन दुख-रजनी को
आलोक-धार थी चूम उठी॥

उनको निश्चित विश्वास हुआ
वह विमल - चन्द्रिका आवेगी।
युग - प्रणयी की सूनी गोदी
सुख-राशि भरी लहरावेगी॥

आशामय - लहरों से मिलकर
सरिता-तट है मुसकाता ज्यों,
प्रातः - सन्ध्या की आभा में
गिरिराज - छत्र लहराता ज्यों,

चंचल चपला की कौंध लिए
घनमय अम्बर घहराता ज्यों,
लेकर माधव से पुष्प-दान
वन-वन तरु-तरु मुसकाता ज्यों,

वैसे ही मोरोपन्त साधु
जाया का लेकर मधुर-भाव।
काली - स्वतन्त्रता देवी की
कर रहे अर्चना भरे चाव॥

हँस पड़े, नियति भी विहँस उठी
नव इन्द्रजाल का मुकुल खिला।
प्रतिपल कण-कण हँस-हँस कहता
है विप्र! किशोरी-रत्न मिला॥

युग-युग की मौन-निराशा से
आशा मुसकाती गले मिली।
उस प्रणय - सरोवर - बीच नवल
लहराती कोमल-कली खिली॥

बोला वह विप्र 'उठो सरले!
चलकर गंगा में स्नान करें।
इस दिव्य-शम्भु की नगरी में
हम यथाशक्ति कुछ दान करें॥'

चल पड़े युगल-प्रणयी कहते
जय काशी के अभिराम प्रभो!
जय अवध-धाम के विमल-हृदय
जय कौशल्या के राम प्रभो!!

सरसिज के कोमल - मानस में
जैसे हिमकण लहराता हो,
पावन - मन्दिर की प्रतिमा का
यश - केतु पवन फहराता हो,

ध्वनि से मिलकर ज्यों मधुर - राग
कानों में मधु बरसाता हो,
ज्यों अचल - मेखला पर निर्झर
सित - सीकरमय मुसकाता हो,

वैसे ही दुर्गा का सुन्दर
उर में वरदान विहँसता था।
जिससे मिलने को सुरसरि का
पावन - उद्गार तरसता था॥

लहरें कहतीं कल-कल ध्वनि में
हृत्पट पर चित्र बनाने को।
अपने भीतर सौंदर्य - हेतु
रवि को नव - अर्घ्य चढ़ाने को॥

अपनी जाया-सँग ब्राह्मण ने
जल में हँस पुनः प्रवेश किया।
पदहीन - अरुण को रवि ने था
ऊषा - गृह से सन्देश दिया॥

घनश्याम-राम कहकर सुख से
जल - बीच नहाते थे प्रणयी।
दे रहा धरा को मुक्ति दान
था घोर - तमिस्रा का विजयी॥

जिस समय उठाई अबला ने
माला - उपहार चढ़ाने को।
कंचन के चंचल - कलित - ललित
भास्कर को विहँस मनाने को॥

उस समय कुक्षि के बीच उसे
सुन्दर - प्रतिमा सी ज्ञात हुई।
अवलोक जिसे थी स्वयं शची
सौन्दर्य - राशि से मात हुई॥

सहसा दोनों दृग बन्द हुए
वह रूप-राशि दमदमा उठी।
शोणित की प्यासी - असि लेकर
वह चम,चम, चम, चमचमा उठी॥

करके तब स्नान द्विजोत्तम ने
शिव-शिव भजते प्रस्थान किया।
प्राची-गढ़ से रवि ने हँसकर
रथ पर चढ़ तुरत प्रयाण किया॥

तट पर बैठे थे दीन-दुखी
देता द्विज उनको दान चला।
देते थे आशीर्वाद सभी
जय गंगा मैया करें भला॥

हो गया नित्य का कर्म यही
मँह - मँह करता था रम्य भवन।
उस पुण्य - व्रती से हवि पाकर
था गन्ध बाँटता पुण्य - पवन॥

मुख पीला होता जाता था
भीतर अरुणाई छाती थी।
मानस-सागर की ऊर्मि विहँस
उठती - बढ़ती लहराती थी ॥

लेकर पावन - सन्देश नया
नव - मास बीतता जाता था।
आनन्द - बधाई बजती थी
मधुमास विहँसता आता था ॥

करते - करते सत्कर्म - धर्म
बीते पूरे नौ - मास अभय।
वे नहीं समाते थे फूले
मन विचर रहा था नित निर्भय ॥

तब शरद - जुन्हाई फैल गई
हो गये सरोवर - जल निर्मल।
व्रतमय - विशुद्ध उस दम्पति के
मानस में विकसे अमल - कमल ॥

कार्तिक की दुग्ध-धवल रजनी
तारक - माला पहनाती थी।
अगणित - लोकों को अंक भरे
अम्बर - सुरसरि लहराती थी ॥

धरणी मोती से सज - धजकर
कोमल - शैया फैलाती थी।
झिल्ली बैठी प्रमुदित - मन से
वीणा का तार बजाती थी ॥

कोमल - रक्तिम - नव - किसलय में
कलियाँ भूषण बन सजती थीं।
सुकुमार - भार से दबी हुई
शशि-किरणें उन्हें बरजती थीं॥

दिनभर का श्रान्त - समीरण भी
गतिहीन - शिथिल अलसाता था।
बन, सरिता, सागर के ऊपर
निज कोमल कर फैलाता था॥

प्रमुदित मन से जग महाराष्ट्र
बीते दिन का गुण गाता था।
अम्बर अगणित - कल्पना लिए
मधुमय - भविष्य दरसाता था॥

नव - मधुर - गुलाबी - शीतलता
चन्द्रिका प्रसव लुटाती थी।
राका यौवन की सीमा पर
लज्जा से मिल मुसकाती थी॥

वह मधुर - हँसी भर लेने को
कुमुदिनी पटल फैलाती थी।
रजनी शुभ - वेला देख नवल
मुक्ता की राशि लुटाती थी॥

सहसा विपदा-घन-पटल चीर
वह एक शक्ति भू पर आई।
उस व्रती - विप्र की दुहिता बन
लक्ष्मी लक्ष्मी बनकर आई॥

माता के स्नेह - सरोवर में
वह सरस लहर बनकर आई।
नित चन्द्रकला सी बढ़ती वह
नव - चपल - भाव लेकर आई॥

थे जननी - जनक प्रसन्न और
उर में सुख-माया थी छाई।
उनकी अभिलाषा रूप बदल
आई बन स्वयं मनूबाई॥

पावन - प्रकाश के मिटने पर
घन - अन्धकार लहराता है,
सावन के पीछे धरणी पर
घन - तुहिन-भार घहराता है,

उस भाँति युगल प्रणायी पर भी
बिपदा का बादल मँड़राया।
सुख से मुसकाते फूलों पर
हिम बनकर तत्क्षण आ छाया॥

शैशव के चौथे बत्सर में
ममता माया से छली गई।
लाड़िली मनूको छोड़ अम्ब
हर-लोक मौन हो चली गई॥

चल बसे चिमाजी भी उनके
जीवन - दाता आश्रय - दाता।
जिनके वैभव पर ही द्विज का
था वंश सदा पोषण पाता॥

उनको बिठूर से उसी समय
था मिला एक सन्देश नया।
थी बाजीराव पेशवा की
जिसमें मुसकाती विमल - दया ॥

आह्वान किया जिसने द्विज को
पावन बिठूर में आने का।
अपनी सुकुमारी - कन्या की
जीवन - कलिका विकसाने का ॥

पाकर सन्देश द्विजोत्तम ने
शंकर को मुदित प्रणाम किया।
पावन - बिठूर के लिये मगन
काशी से शुभ - प्रस्थान किया ॥

दूसरी हुंकार

हो रहा समर था निशि-दिन का
वसुधा के धूमिल - अंचल पर।
जिसका आतंक गरजता था
तरुवर के कम्पित - दल-दल पर॥

यह समर देखने को रवि भी
चढ़ गए उदयगिरि के सिर पर।
जिसके प्रताप से शिखर - स्वर्ण
वह चला पिघलकर भूतल पर॥

उदयाचल के लाक्षा की है
प्राची की लाली निर्झरिणी।
जो वन की नीली सरिताएँ
सिन्दूरी - सुन्दर सी तरिणी॥

हैं सूर्यदेव के साथ - साथ
ये अरुणदेव वैभवशाली।
जिनके पद पर हैं अनुज गरुड़
नत - मस्तक ले अक्षत थाली॥

जिनके पंखों की शरद - कान्ति
क्षिति पर लहराती स्वर्ण - वर्ण।
है वर्य अरुण का नव - प्रकाश
नभ से भूतल तक रक्त - वर्ण॥

युग भ्राता के मिलने से यह
बन गई शुभ्र अति प्यारी है।
प्राची की यह शोभा जिसकी
वसुधा पर सबसे न्यारी है॥

पावन - प्रकाश का विजय हुआ
भागी रजनी अवनी-तल से।
अचला थी मगन विजय को लख
दृग-कमल खोल अंचल-जल से॥

विहँसी युग की सोई वाणी
प्रज्ञा का विमल - प्रकाश हँसा।
हँस पड़े दिगम्बर भूतनाथ
डमरू, त्रिशूल, कैलाश हँसा॥

था क्षीर-सिन्धु का हृदय मुदित
उस पर सोये कमलेश हँसे।
सुर-सेवित - शुभ - सिंहासन पर
थे शची-सहित अमरेश हँसे॥

प्राची विहँसी, पश्चिम विहँसा
युग का सोया करवाल हँसा।
जिससे चमचम करता क्षण में
पावन नगपति का भाल हँसा॥

मानवता के आदर्श हँसे
दानवता का संहार हँसा।
गुरुता का पावन भार हँसा
युग का सोया उपहार हँसा॥

सबला के पावन रूप हँसे
शृङ्गारों का सम्भार हँसा।
लज्जा के रक्षक भूप हँसे
नारी-जीवन का सार हँसा॥

युग के सोए आश्रम विहँसे
थे सामवेद के गान हँसे।
विहँसे ब्रज के अभिराम श्याम
श्री कोशलेश भगवान् हँसे॥

थे भानु-सुता के तट विहँसे
सरयू के उर्मिल पट विहँसे।
सरिता विहँसी, निर्झर विहँसे
भूतल के भारी भट विहँसे॥

पर्वत विहँसे, उपवन विहँसे
ककड विहँसे, पत्थर विहँसे।
तरु-तृण विहँसे, रज-कण विहँसे
सोए संगर के स्वर विहँसे॥

विहँसा भूतल का महाकाल
सावित्री का वरदान हँसा।
सीता की अग्नि-परीक्षा का
पावन वह अमिट विहान हँसा॥

युग की सोई ममता विहँसी
थे पंचवटी के राम हँसे।
हँस पड़े हिमालय, विन्ध्य, मेरु
भारत के चारों-धाम हँसे॥

युग की सोई माँ-बहनों के
जौहर का अचल - सुहाग हँसा।
हँस पड़े सत्य के नियम कठिन
सब राजपाट का त्याग हँसा॥

युग का सोया बुन्देलखण्ड
विहँसा स्वर्णिम उपहार लिए।
मानवता का संसार लिए
बीते युग का उद्‌गार लिए॥

जननी-पद पर मिटनेवाले
रण-वीर चले हथियार लिए।
कण-कण से विक्रम फूट पड़ा
रणचण्डी की हुंकार लिए॥

उर पर मुण्डों का हार लिए
जग-जरा-मरण - व्यापार लिए।
हर - हर शंकर की गूँज लिए
जलनिधि-सम जय - जयकार लिए॥

था केसरिया - बाना विहँसा
घर-घर का वन्दनवार हँसा।
तोरण विहँसा, हँस उठा कलश,
मंगलमय - जग-व्यापार हँसा॥

गो-ब्राह्मण के रक्षक विहँसे
घन-घन बजते घड़ियाल हँसे।
जीजीबाई के लाल हँसे
युग के जाग्रत - करवाल हँसे॥

हर-हर - शंकर, हर-हर - शंकर
भजकर बढ़नेवाले विहँसे।
रण की गंगा पर सेतु बना
थे सब चढ़नेवाले विहँसे॥

मन की गति से भी गतिवाले
रग - रग में नव हुंकार लिए।
रणवीरों का वरदान लिए
नर-नर का जय-जयकार लिए॥

नस - नस में शक्ति अपार लिए
उर में स्वर्णिम - संसार लिए।
बीती गाथा साकार लिए
भावी युग का उद्‌गार लिए॥

थे चपल तुरग गढ़ से चलकर
आगे बढ़कर हिनहिना उठे।
उन वीर - बाँकुरे - लालों के
बरछी - भाले झनझना उठे॥

बाँहें फड़कीं, बिजली चमकी
सब महा अचल डगमगा उठे।
रवि के रथ के घोड़े नभ के
पथ पर रुककर सगबगा उठे॥

वह मनू विहँस आगे-आगे
घोड़े की बाग सँभाल चली।
पीछे नानासाहब की भी
वीरों - सी नाहर - चाल चली॥

वे स्वतन्त्रता के वीर व्रती
भावी भारत के लाल चले।
सुषमा - मण्डित - प्रासादों से
हँसते बालक तत्काल चले॥

घोड़े को रोक मनू बोली
"नाना साहब! अब रुक जाओ।
लो रोक राव साहब! भाला
आगे न बढ़ो तुम रुक जाओ॥

देखूँगी किसका बाजि आज
विजयी होता है चालों में?
पर्वत के उन्नत शिखरों पर
बरछी, भाले, करवालों में?

मानवता की हुंकारों में
दानवता के संहारों में।
निर्ममता की फुफकारों में
अरि - दल के तीखे - वारों में॥"

यह कहते हुए मनू ने तब
अपने हय को सरपट छोड़ा।
नल के कौशल को लज्जित कर
बन गया पवन का वह जोड़ा॥

पलकों के गिरने-गिरते ही
विजयी घोड़ा हिनहिना उठा।
विकराल - काल की जिह्वा - सम
कटि का कटार टिनटिना उठा॥

था कुरुक्षेत्र फुफकार उठा
हुंकार लिए रणवीरों का।
नभ के प्रांगण में गरज उठा
जयघोष समर-कृत वीरों का॥

यह देख मनू की कला नवल
नभ में थी चपला चमक उठी।
बाँहे फड़कीं, माता विहँसी,
अन्तक की छाती धड़क उठी॥

वह पुनः विहँसकर बोल उठी
"नाना! घोडा तैयार करो।
विचलित मत होना निज पथ से
कसकर वल्गा का भार धरो॥

घोड़े को एड़ लगाओ अब
या कह दो मेरी हार हुई।"
थी मनू लाड़िली के मुँह से
ऐसी निर्भय हुंकार हुई॥

बालक नाना सुन कड़क उठा
क्या है क्षत्रिय का धर्म यही?
क्या वीर-प्रसविनी माता के
बच्चों का होगा कर्म यही?

युग-युग से रण-मतवाले का
यश केतु गगन में फहराता।
क्षत्रिय का पावन तेज अभी
जन-जन-मानस में लहराता॥

खोए स्वत्वों की रक्षा हो
दीनों के धन की रक्षा हो।
जो नस-नस में है बिचर रहा
उस जाति-सदन की रक्षा हो॥

सिंहिनी सिंह को जब जननी
वन-वन तरु-तरु थर्राता है।
विकराल-काल से लड़ने को
वह बार-बार गुर्राता है॥

बस कर, चुप रह, अश्वारोहण
मैंने भी गुरु से सीखा है।
जिसका पावन साक्षी मेरे
कर का यह भाला तीखा है॥

हे वाजि! तुझे मारुत-गति को
नीचा अब दिखलाना होगा।
अब मनू लाड़िली के हय को
गति से गति सिखलाना होगा॥

अम्बर को घहराना होगा
पर्वत को थर्राना होगा।
माता के मुख की लाली को
चहुँ-दिशि में फैलाना होगा॥"

इतना कहकर नानासाहब
जुट गए कला की बाजी पर।
जैसे वसन्त उल्लास-भरा
जुट जाता है वनराजी पर॥

हँस एड़ लगाकर घोड़े को
फिर किया सजग क्षण कोड़े को,
अपनी पैनी तलवार लिए
ललकार अनिल के जोड़े को ॥

दो - चार - टाप देकर घोडा
दो - पैरों पर हो गया खड़ा ।
क्षण भभक दौड़ दो डग उसने
अवनी पर निज पद दिया गड़ा ॥

बालक नाना भी डरा नहीं
घोड़े पर डटकर अड़ा रहा ।
घोड़ा भी टस से मस न हुआ
दो - पैरों पर ही खड़ा रहा ॥

पद रखकर वह हिनहिना उठा
चल वक्र - चाल चकपका उठा ।
नाना इस विकट परिस्थिति मे
भय-ग्रस्त हुआ सकपका उठा ॥

कुछ बस न चला उस बालक का
घोड़ा निज वश से बाहर था !
अड़ियल था, पक्का टेढ़ा था,
अपनी धुन का वह नाहर था ॥

था पड़ा पार्श्व में शुष्क काठ
तपती थी भूमि हुताशन - सी ।
गिर पड़े उसी पर नाना थे
ध्वनि गरजी शंभु शरासन - सी ॥

सिर से शोणित बह चला त्वरित
उस वीर - युवक के घावों से।
चीत्कार भयंकर निकल पड़ी
भावी भारत की चाहों से॥

तत्काल गिराकर नाना को
टपटप दौडा सरपट घोड़ा।
भय का न रहा उस पर शासन
सिर पर न तड़पता था कोड़ा॥

इस करुण - दशा पर मनू शीघ्र
अपने घोड़े से उतर पड़ी।
नभ से नीली - चादर ओढ़े
साकार - भवानी उतर पड़ी॥

विहँसी ऐसे संकल्पों पर
इन शक्तिहीन अभिमानो पर।
बातों के सेतु बनाकर ही
यश के इच्छुक मर्दानों पर॥

नाना साहब! क्यों सोते हो
बलहीन, बने हो मर्दाने।
क्या इसी भुजा का बल लेकर
थे चले गगन भू पर लाने?

नाना का सिर कर में लेकर
लोहू की धार तुरत रोकी।
जो विहस रही थी अति मूर्च्छा
स्मिति से वह भी सत्वर रोकी॥

"जागो जागो हे मौनव्रती !
अभिमान - शान की रक्षा कर ।
नर के मुण्डों की रक्षा कर,
गौ के झुण्डों की रक्षा कर ॥

यह समय नहीं है सोने का
हँस तन्द्रा का बन्धन तोड़ों ।
रज में सोने का समय नहीं
माया की सब ममता छोड़ो ॥

बोलो नाना ! तुम एक बार
मानवता भी हँसकर बोले ।
इस पराधीनता का बन्धन
मेरी तलवार विहँस खोले ॥

कुछ क्षण ही में फिर हुआ चेत
नीरवता का हो गया अन्त ।
उल्लास भर गया कण-कण में
हो उठा प्रफुल्लित दिग्दिगन्त ॥

यह देख मनू को हुआ हर्ष
क्षण वज्र - सदृश भौंहें फड़कीं ।
बिजली कड़की, अवनी घड़की,
झटपट युग की कड़ियाँ कड़की ॥

नाना साहब ! अब बोल, बता,
यह हार हुई या जीत रही ।
जो शक्ति अभी बातों में थी
वह उष्ण हुई या शीत रही ॥"

नाना से कहती हुई मनू
निज कर का अवलम्बन देती।
लोहू से लथपथ आनन को
थी पोंछ - पोंछ सान्त्वन देती ॥

घावों से पीड़ित नाना की
केवल पुतली ही फिरती थी।
कुन्तों के पौरुष-सागर पर
आशा की तरणी तिरती थी ॥

अम्बर की क्रीड़ा बन्द हुई
धरणी की क्रीडा बन्द हुई।
कण - कण की क्रीड़ा बन्द हुई
युवकों की क्रीड़ा बन्द हुई ॥

चल पड़ा वाजि गढ़ ओर तुरत
मारुत - गति से गतिवाला था।
टापों से अरि-सिर फोड़ - फोड़
रण में लहरानेवाला था ॥

वह एक हाथ से नाना को
गिरने से बठ सँभाले थी।
सिर पर आकाश सँभाले थी
कर से वह बाग सँभाले थी ॥

पावन - बिठूर मुसकाता था
मधुमय - भविष्य मुसकाता था।
जन - जन की आशा से मिलकर
सब धर्म-कर्म मुसकाता था ॥

नानासाहब का घाव देख
सब लोग बहुत ही घबराए ।
मरहम पट्टी के लिये वैद्य
क्षण में ही वहाँ चले आये ॥

पर घाव न उतना गहरा था
केवल चिन्ता का कारण था ।
मानस की द्वन्द्व-विकलता का
वह बना हुआ केवल व्रण था ॥

जब मनू रात्रि को भोजन कर
निज कक्ष-मध्य जाकर सोई ।
तब राजभवन में भी न उधर
आता या जाता था कोई ॥

धीरे से बोली "तात ! सुनों
कुछ चोट लगी बाबा को है ।
तिस पर इतने हैं लोग व्यग्र
भारी चिन्ता दादा को है ॥

यह है क्षत्रिय का धर्म नहीं
शोणित को लख घबरा जाना ।
उसका तो यह बाना ही है
निर्भय अन्तक से लड़ जाना ॥

अवयव - अवयव भी कट जाए
पर गरज - गरज आगे बढ़ना ।
शस्त्रों से रिपु को मार - मार
जय-मंत्र सतत पढ़ते रहना ॥

"बेटी ! नाना का घाव बड़ा
दो अंगुल मात्र रहा होगा।
यह ज्ञात नहीं उसमें से ही
अब कितना रक्त बहा होगा ?"

"हे तात ! सुनाते थे मुझको
इतिहास पुराने वीरों का।
सागर को शोणित से भरकर
लड़नेवाले रणधीरों का ॥

हँसकर शोणित से पिचकारी
भर फाग खेलनेवालों का।
बोट - बोटी पर अरि - दल का
हँस वार रोकनेवालों का ॥

आख्यान सुनाया है गुरु ने
पौरव नरेश के चावों का।
रण में लगनेवाले उनके
तन के उन अस्सी घावों का ॥

फिर भी छाती उत्तान रही
घावों की थी परवाह नहीं।
उस वीर पुरुष के मुख से थी
निकली रंचक भी आह नहीं ॥

हे तात ! सोचते थे रण को
क्या इन्द्रजाल का खेल अभी ?
इससे न कभी कट सकती है
अरि की बोई विष-बेलि अभी ॥"

"सुन बात छबीली ! नाना तो
सोलह वत्सर का बालक है।
वह अभी नहीं सह सकता है
वह नहीं घाव का पालक है ॥"

"जिस पार्थ-पुत्र की आप सदा
थे मुझे सुनाते वीर-कथा।
वह सप्त महारथियों का था
कैसे सह पाया घात-व्यथा ॥

वह भी सोलह वत्सर का ही
अपनी माता का प्यारा था।
कर चक्रव्यूह का खण्ड-खण्ड
रिपु को उसने संहारा था ॥

जिसने संगर में अरि - दल को
एकाकी लडना सिखा दिया।
बढ़कर नभ के मस्तक पर था
गौरव का टीका लगा दिया ॥

भूतल के वीर सपूतों को
संगर में मरना सिखा दिया।
हँस कुरुक्षेत्र की वेदी पर
नव - प्राण-सुमन था चढ़ा दिया ॥"

"पर हे बेटी ! वह समय नहीं
बीते युग का वह बाना है।
केवल उसकी कमनीय - कथा
सुन - सुनकर समय बिताना है ॥"

"हे तात ! वही आकाश धरा
हम सबका भी है रूप वही।
नभ में है अभी वही रवि-शशि
तारों का वेश अनूप वही॥

हिमगिरि का अभी ललाट वही
गंगा की पावन धार वही।
यमुना का श्यामल रूप वही
संगम का अतुलित प्यार वही॥

कमला का पावन धाम वही
जन-जन में रमता राम वही।
ब्रज का ब्रज मण्डल अभी वही
वृन्दावन - सुन्दर - धाम वही॥

शंकर की है शिवपुरी वही,
कैलास - अचल है अचल वही।
जन-जन के मुख में गूँज रहा
बम - बम शंकर की भजन वही॥

उस वीर शिवा की जन्म - भूमि
शिवनेरी का है दुर्ग वही॥
है वही अभी हल्दीघाटी
चित्तौर - दुर्ग है खड़ा वही॥"

सुन कर पुत्री का गूढ़ - प्रश्न
हो उठे पिता भी शीघ्र विकल।
उत्तर के लिये लगी कहने
"बतला दे तात ! मुझे प्रतिपल॥"

यह देख सुता की आतुरता
वे कहने लगे पुन. हँसकर।
जिनके भय से भारत माता
हतबुद्धि पडी करती थर-थर॥

"अब अँगरेजों के वैभव का
है सूर्य गगन में चमक रहा।
जिससे हत होकर देश-तेज
भूतल में सोया दमक रहा॥"

कह उठी मनू "हे तात! अभी
यह भारतवर्ष हमारा है।
इस वसुधा पर कोई न सदा
रख सकता जीवन सारा है॥

जो बात आपने कही अभी
वह कायर का उर कहता है।
वह हलवाहे का बैल बना
गाली या मारें सहता है॥

मानव ने हिमगिरि को लाँघा
जलनिधि को गण्डुलि पर पीया।
अन्तक की छाती कँपा कँपा
अवनी पर युग-युग तक जीया॥"

"जब और बडी होगी बेटी!
इसका तुमको अनुभव होगा।
संसार कहाँ है, कैसा है
यह ज्ञान तभी सम्भव होगा॥"

"मैं डरनेवाली नहीं तात!
विघ्नों के तप्त अँगारों से।
यह सिर न कभी झुक सकता है
बैरी के तीखे - वारों से॥

यह कहाँ गया उपदेश सबल
जो आप मुझे सिखलाते थे?
अब कहाँ गया वह सती-चित्र
जो आप मुझे दिखलाते थे?

कहते थे कर्णवती बनना
अरि - गण के अत्याचारों में।
कहते ताराबाई बनना
रिपु - दल को विकट कटारों में॥

हाड़ारानी सम हाड़-हाड़
माँ-अंचल पर बिखरा देना।
अरि - कर का तन पर स्पर्श न हो,
यह पाठ न तुम बिसरा देना॥

माता सीता बनकर भू पर
निज सत्य - धर्म सिखला देना।
पावन गीता बनकर जग में
नव सत्य - पन्थ दिखला देना॥

जीजाबाई सम अवनी पर
निज कीर्ति - ध्वजा फहरा देना।
दुश्मन के सिर का मुण्ड-माल
शङ्कर को विहँस चढ़ा देना॥

उत्तर देने में हुए मौन
क्षण भोरोपन्त छबीली का।
इस वाक्य-युद्ध में हुई विजय
निशि में उस सद्गर्विली का॥

इसलिये मनू से अधिक रात
गत होने की ही बात कही।
यह गूढ़ समस्या रजनी के
तम-अंचल में ही पड़ी रही॥

सो गई मनू पर सो न सके
थे पन्त समय की उलझन में।
आगे की विकट समस्या भी
आती न रही कुछ सुलझन में॥

वे सोच रहे थे—'मनू आज
वय से आगे है मुसुकाती।
उसका विवाह करने की है
यह शुद्ध अवस्था बतलाती॥

पर वर वरतर न मिला कोई
था भारत - भू के अंचल पर।
आशा मुसकाकर सो जाती
थी तरु के पुलकित - दल-दल पर॥

यह बात सोचते हुए पन्त
सो गए निशा के अंचल पर।
गड़ गया स्वप्न का विजय - केतु
चेतना - भूमि के हृत्तल पर॥

युग-युग से तपती सुरसरि की
छाती शीतल हो गई तुरत।
नर में नारायण की रक्खी
थाती शीतल हो गई तुरत॥

तीसरी हुंकार

सोने के रश्मि-हिंडोले पर
जीभर जो झूला करती थी।
जिसकी छवि का आलोक निरख
नव कलियाँ फूला करती थीं॥

कोयल पंचम स्वर में जिसके
स्वर का यश गान सुनाती थी।
शफरी जिसके चल-नयनों की
चंचलता फुदक बताती थी॥

जिसके निश्वासों का परिमल
मलयानिल नित्य बहाता था।
जिसके मुख-छवि-सर में नित ही
शशि किरणों-सहित नहाता था॥

हँस जिसके ललित कपोलों से
लेता पाटल था नव लाली।
जिसकी मधुमय स्मिति के रस से
भर जाती सुमनों की प्याली॥

जिसके कच की श्यामलता से
कालिमा अमा भी लेती थी।
निज-चन्द्र-चाँदनी-सा जिसका
राका कोमल तन धोती थी॥

जो सबकी पलकों में बसकर
प्राणों से प्राण मिलाती थी।
जीवन के कुसुम - सुरभि में जो
कमनीय - कला दिखलाती थी॥

जिसके तन की कोमलता पर
कोमलता भी बलि जाती थी।
वल्लरी नित्य जिसके तन से
चंचल - नव - भाव चुराती थी॥

गालों को पाटल - कुसुम समझ
मधुपावलि भी मँड़राती थी।
जिसके निःश्वासों की लय में
नव - कलिका नित्य नहाती थी॥

वह मनू चन्द्र की कला - सदृश
प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी।
जन-जन के हृदय कमल मे वह
नित सरस - सुरभि बरसाती थी॥

पावन - बिठूर के उर सर में
सरसिज - सम खिलती जाती थी।
सुरसरि की पावन - धारा भी
जिसका गुण - गान सुनाती थी॥

थी मनू प्रकृति को पूज रही
नव रूप-कुसुम की माला से।
वह आत्म - विभोर बना देती
सब को कल - ध्वनि की हाला से॥

यह देख बालिका का विकास
सुखमय - वसन्त के सौरभ-सा।
मधुमय - कलियों सा मधुर-हास
गुंजित मराल-रव के नभ - सा ॥

जग पड़ा हृदय में नवल - भाव
पावन - विठूर के जन-जन में।
हो मनू योग्य वर की रानी
यह कहते थे सब मन - मन में ॥

ज्यों मिले सती को थे शंकर,
रति ने मनोज को अपनाया।
राधा को जैसे मिले श्याम,
सीता ने रघुवर को पाया ॥

जिस भाँति शारदा ने अज को,
कमला ने था हरि को पाया।
ज्यों मिले शची को थे सुरेन्द्र
सावित्री को निज पति भाया ॥

वैसे ही मनू लाड़िली को
मिल जाय योग्य वर हे माता!
पुर की माताएँ मना रही
थीं शक्ति उमा, गौरी माता !!

ज्यों लता सुखद - तरु से लिपटी
निज जीवन सफल बनाती है।
निज पत्र - व्यजन झलती रहती
नव भाव - सुमन पहनाती है ॥

नूतन - आभा नव - किसलय से
मिल-मिलकर ज्यों मुसकाती है।
रक्तिक - पल्लव के अंचल में
लज्जा से छिपती जाती है॥

जैसे प्रियतम माधव से मिल
कलियाँ सुख से मुसकाती हैं।
पद-पूजन में रंजित उर का
दल-कर से गन्ध चढ़ाती हैं॥

वैसे ही मनू लाड़िली भी
पति-पद-सेवा दिखलावे प्रभु!
अपने सुन्दर - मन का इच्छित
वर सुखद विश्व में पावे प्रभु!

यह कह-कहकर पुर की बधुएँ
जीवन की घड़ी बिताती थीं।
उनकी उर-सरसी में प्रतिदन
वात्सल्य - बीचि मुसकाती थी॥

अब लगे खोजने योग्य पात्र
श्री मोरोपन्त चतुर्दिशि में।
चिन्ता के शासन में उनको
निद्रा न कभी आती निशि में॥

तात्या दीक्षित से चली बात
लाड़िली मनू के परिणय की।
सुखमय—भविष्य के अंचल पर
जगनेवाले उस निर्णय की॥

दीक्षित थे पुर-जन में कुलीन
थे सर्वयोग्य वर के ज्ञाता।
पावन - स्वधर्म के नव प्रतीक
थे वयोवृद्ध – विद्यादाता ॥

मन में उस वृद्ध द्विजोत्तम ने
जो - जो सुयोग्य वर ठहराया।
उसका न मिल सका जन्म-पत्र
इसलिए निराशा-तम छाया ॥

सहसा दीक्षित को हुआ स्मरण
झाँसी के नृप गंगाधर का।
सर्वज्ञ, कुलीन, सुयोग्य बली
सुन्दर, दृढ़-सत्य-धनी वर का ॥

चल पड़े शीघ्र वे झाँसी को
उर में नवीन उल्लास भरे।
नभ में लहराते थे पथ के
सुन्दर - गिरि-मस्तक हरे-हरे ॥

थी खड़ी वनाली ले माला
वन - रानी को पहनाने को।
तरुवर थे खड़े मधुर - फल ले
जननी को मुदित चढ़ाने को ॥

कल-कल ध्वनि में निर्झर प्रतिपल
वनमाली का गुण गाता था।
पथ के दूरागत पथिकों का
तन-ताप मिटाता जाता था ॥

मद-मस्त मयूर मगन होकर
नित नृत्य-कला दिखलाते थे।
जल-पूरित विमल सरोवर में
अलिगण गुन, गुन, गुन गाते थे॥

नव - रम्य-सुखद-पथ पर झुककर
तरुवर नव - व्यजन डुलाते थे।
मन अनायास था रमा हुआ
दीक्षित जी बढ़ते जाते थे॥

पुलकित तन था, प्रमुदित मन था,
मानस में था उल्लास भरा।
अभिलाष - बीज के उगने से
नव भाव-क्षेत्र था हरा - भरा॥

वे पहुँच गए झाँसी प्रदेश
मानवी कला से न्यारा था।
था प्रकृति - अंक में खेल रहा
वह रानी का अति प्यार था॥

झाँसी की राज - सभा सज्जित
बैठे नृप थे सिहासन पर।
सामन्त, पारिषद, सेनानी
बैठे थे निज निज आसन पर॥

मणि-रत्नों की उजियाली में
चमचम वह सभा चमकती थी।
सौ - सौ - दिनकर - सम तेजमयी
राजा की कान्ति दमकती थी॥

दीक्षित जी का था बड़ा मान
राजा के सुखमय शासन में।
वे थे श्रद्धा की सौम्य - मूर्ति
विश्वास बना था जन-जन में॥

तब सभा विसर्जित होने पर
मारुत गण धीरे से डोले।
एकान्त स्थान में दीक्षित जी
साहस करके नृप से बोले॥

'प्रभुवर ! है केवल एक विनय
आज्ञा हो तो मैं अभी कहूँ।
यदि समय न हो सुनने का तो
प्रभु ! क्षमा करें, मैं मौन रहूँ॥'

यह बात अटपटी सुनते ही
भूपति धीरे से विहँस पड़े।
दीक्षित जी की उर-सरसी के
अभिलाष - कमल सब विहँस पड़े॥

कोमल - वाणी में नृप बोले
"जो कहना है कह सकते हैं।
यदि कोई गूढ़ समस्या हो
तो उसको भी गह सकते हैं॥"

यह देख सुअवसर उस द्विज ने
मृत-रानी का आख्यान कहा।
जिसको सुनते ही भूपति ने
उस पर वह पिछला घाव सहा॥

पर सोच नहीं है अब प्रभुवर !
कुछ वश न किसी का चलता है।
सुख-दुख के पलने पर मानव
जीवन में पलता रहता है॥

झाँसी की जनता रानी के
आगम का भावन करती है।
अपने उर में राजा के हित
वह पुत्र-कामना भरती है॥

दीक्षित जी की इन बातों पर
भूपति भी आशा-पट खोले।
ले जन्म-पत्र निज हाथों में
गम्भीर - भाव में वे बोले॥

"इस मेरी पत्री में इतना
तेजस्वी ग्रह मुसकाता है।
जिससे न किसी से मिल पाती
नव - विघ्न-जलद लहराता है॥"

सुनकर राजा की बात शीघ्र
द्विज ने कर में वह पत्र लिया।
मिल गया मनू से जन्म-पत्र
नृप को गुरु ने वह पत्र दिया॥

खिल उठा झटिति नृप का मानस
तन-रोम-रोम भी मुसकाया।
भावी रानी का ध्यान तुरत
नृप के उर में आ लहराया॥

तब मनू-वंश की पुण्य-कथा
सुन गए द्विजोत्तम से सुख से।
सुनकर कन्या की रूप-कथा
कुछ कह न सके गद्‌गद् मुख से॥

हो गया मनू से ब्याह ठीक
झाँसी के नृप गंगाधर का।
सर्वज्ञ, कुलीन, सुयोग्य, बली,
सुन्दर- दृढ़, सत्य-धनी वर का॥

दीक्षित जी ने आकर बिठूर
यह मुदित नया सम्वाद कहा।
श्री बाजीराव-पन्त ने भी
जिसको हँसकर स्वीकार किया॥

हो गया प्रथम ही यह निर्णय,
झाँसी में ही होगा विवाह।
यह मनू बनेगी पटरानी
झाँसी के गढ़ की स-उत्साह॥

चौथी हुंकार

प्रकृति उठ सुख से आँखें खोल
देखने लगी सकल संसार।
धरा पहने थी नीलम - हार
जगत का था सुखमय - व्यापार॥

सरों में जगकर सलिल-विलास
खेलने लगे पवन से खेल।
खुल गया जग में सुख-भण्डार
प्रभा का हुआ छटा से मेल॥

पराजित घोर - तमिस्रा मौन
लगी लेने गिरि - गह्वर - छाँह।
बताने लगी अमन्द - सुगन्ध
मधुप को मधु से सींची राह॥

खुल गया प्राची का प्रासाद
विहँसने लगे हेममय – द्वार।
दमकने लगा छटा के साथ
उषा के उर का अरुणिम - हार॥

सँभाले एक हाथ से हार
दूसरे से लज्जा का भार।
खड़ी नभ - पनघट पर साकार
देखता था उसको संसार॥

खींचती सखी दिशाएँ मौन
पकड़कर स्वर्ण - डोर की छोर।
निकलने लगा स्वर्णमय कलश
हुआ जग क्षण में आत्म - विभोर ॥

भरा था जिसमें जीवन - सार
प्रभा रखवाली करती घूम।
धरा भी स्वयं बनी थी धन्य
गगन पर थी उत्सव की धूम ॥

उषा ने कोमल कर से खींच
उसे हँस जग में दिया उड़ेल।
पानकर जिसको विश्व महान्
खेलने लगा प्रभा से खेल ॥

विहँसने लगी प्रकृति तत्काल
खिल गए भाँति - भाँति के फूल।
मगन था गगन, प्रफुल्लित भूति,
प्रभामय अम्बर - जल - थल - कूल ॥

घूमने लगा मस्त मधुमास
धरा पर सुख से चारों ओर।
कहीं पर होते खग के गान,
कहीं पर नाच रहे थे मोर ॥

जगाने लगा प्यार के साथ
अभी जो सोए थे नव - फूल।
धरा पर माधव का सन्देश
गए थे असमय में जो भूल ॥

धरा थी सुख में आत्म - विभोर,
नहीं था कहीं द्वेष-अपमान।
देवगण स्वर्गलोक में बैठ
गा रहे थे जिसका यश-गान॥

जहाँ के विमल अंक में नित्य
गूँजते थे वीरों के नाद।
चमकता हथियारों से पूर्ण,
वही है झाँसी का प्रासाद॥

पहाड़ी - विषम - भूमि पर दुर्ग
बना है परकोटा चहुँ - ओर।
मधुर - कलकल - निर्झर का शब्द
बना रहता निशि-दिन चित-चोर॥

गगनचुम्बी - भवनों के केतु
उड़ रहे थे अविरल - अविराम।
अरुण का हरकर वे अस्वेद
व्यजन झलकर देते विश्राम॥

मेघ-मालाओं का कर - स्पर्श
धवल - प्रासादों का कल-कण्ठ,
जान पडता था ऐसा दिव्य
शम्भु-तन पर हो नीला - कण्ठ॥

धवल - नगरी, कञ्चन - प्राकार
अमर-गिरि-सम लगते सुख-खान।
अमरपुर मानो करके मान
लगाए हो अवनी पर ध्यान॥

भवन की धवल पताका नित्य
खेलती थी नभ में अविराम।
कहीं यह कौशिक द्वारा त्यक्त
व्योम-गंगा ही है छवि-धाम॥

बँधे थे जिसके चारों ओर
सुखद - नव - सुन्दर - बन्दनवार।
राजती जिसमें आठों - सिद्धि,
ऋद्धि का पावन - पारावार॥

निपुण - रमणी ले अक्षत - थाल
रँग रही थी हल्दी के साथ।
दूसरी रचती परिणय-चौक
मुदित नव - रुचिर - कला के साथ॥

तने थे पथ में सुखद - वितान
वस्त्र - फूलों के चारों - ओर।
मानकर जिनको पुष्प, मिलिन्द
महक में होते आत्म - विभोर॥

गड़े थे सिंह - पौर पर दिव्य
रुचिर कदली के नूतन खम्भ।
हर रहे थे प्रतिपल सविनोद
रमणियों के उरु के सब दम्भ॥

बँधा था उस पर पट के साथ
सुखद हीरे-मणियों का हार।
विहँसता गढ़ के चारों ओर
नवल - सुषमा का पारावार॥

द्वार पर शहनाई का शब्द
पवन का भी बनता चित-चोर।
नाचता रहता था सविनोद
चराचर का निशि-दिन मन-मोर॥

बचा था अब तक संकट झेल
जाति का यदि गौरव - अभिमान,
पूर्वजों के पौरुष का गान
अमरता का पावन - वरदान,

विश्व में जो है अभी महान्
धरा पर धर्म-कर्म का साज।
मृत्यु कर जोड़े रहती नित्य
देखकर जिनका अनुपम राज,

वही है इस भारत का प्राण
पड़ा है जिसका झाँसी नाम।
गड़ी है जिस पर अरि की आँख
वही है भारत का छवि-धाम॥

चमकता रहता चमचम मुकुट
जहाँ झुकते भूपों के शीश।
जाति का गौरव, शौर्य महान्
मुदित हो देते थे आशीष॥

राज्य था भू पर सुखद अनूप
देखने का रहता था चाव।
फहरता था जिसका यश-केतु
नाम था श्री गंगाधर राव॥

राज्य में नहीं कहीं षड्यंत्र
प्रजा में नहीं व्याप्त था शोक।
सुना सकते सब मन की बात
नहीं थी राज-भवन में रोक॥

न्याय में होता शुद्ध विचार
नही था कहीं कपट-व्यवहार।
दीन-दुखियों को मिलता दान,
अतिथि पाते समुचित सत्कार॥

सामने कुरुक्षेत्र था दिव्य
सुशोभित थे रथ पर भगवान।
मोह में पड़े पार्थ को कृष्ण
दे रहे थे गीता का ज्ञान॥

दुष्ट दुःशासन का दुष्कृत्य
द्रौपदी करती हाहाकार।
बढ़ाते थे माधव छिप चीर
हो रहा था पट-पारावार॥

सुखद तापस-बाला का चित्र
टँगा था एक द्वार की ओर।
दौड़ते हरिण झुण्ड के झुण्ड
विचरते कीर, पपीहे, मोर॥

इसी नव शुभ-मुहूर्त में शीघ्र
मनू आ गई पिता के साथ।
देख भावी सम्राज्ञी रूप
हो गई झाँसी-भूमि सनाथ॥

लगीं बालाएँ करने शीघ्र
विवाहोचित निज ललनाचार।
लगा होने वैदिक-विधि-सिद्ध
रुचिर - वैवाहिक - शुभ - व्यवहार॥

हुए नर-नारी सभी प्रसन्न
देख रानी का सुन्दर - रूप।
त्यागकर ब्रह्म-कला ही स्वर्ग,
अवनि पर आई मूर्ति अनूप॥

मगन था गगन, धरा थी धन्य,
प्रभाती गाने लगा विहान।
मनू के कमलानन पर दिव्य
चमककर जागा सेंदुर - दान॥

गूँजने लगा वेद का मंत्र
सनाथाओं ने गाया गीत।
सुशोभित थे आसन पर भूप
राजता तन पर नव - उपवीत॥

पाठकगण भूल न जायेंगे
हो गई मनू लक्ष्मीबाई।
जिसने भारत की कीर्ति-ध्वजा
नभ-मस्तक पर थी फहराई॥

पाँचवीं हुंकार

प्रभाती गाता विहग-समाज
जगत् में है सुषमा का राज।
कर रहे जड़-चेतन निज काज
धरा पर धन्य शान्ति का साज॥

बोलते कहीं पपीहे – मोर,
कहीं होती दादुर-ध्वनि घोर।
कहाँ है छिपा अरे! चित-चोर
बना देता जो आत्म-विभोर॥

देखती हूँ मैं नूतन-बात
दिवस का मुख लगता है म्लान।
हमारे वीरोचित अभिमान
मुझे ही लगते हैं अनजान॥

नहीं इस भव्य भवन के बीच
हुआ है जिसका यह शृंगार,
बैठकर कर सकती उपकार
या कि इस भारत का उद्धार॥

भोग का है यह मेरा साज
छूटता जाता पौरुष-संग।
नहीं पा सकती चपल-तुरंग
बरजते ये मेंहदी के रंग॥

मिला था जो नभ से वरदान
विहँसती थी जिस तन पर धूल,
कर रही हूँ उसका अपमान
राजते आज उसी पर फूल ॥

घेरते नभ को काले - मेघ
जगत् में आया हो भूडोल।
और मैं बैठ सुखों के बीच
बोलती रहूँ काकली - बोल ॥

धरा पर हो पतझड़ का राज
भूमि का लुटता हो नव - साज।
और मैं बैठ दासियों - बीच
सजाऊँ अपना नूतन - साज ?

धुले बहनों का अरुण - सुहाग
मचा हो भूतल पर चीत्कार।
नित्य मैं खेलूँ हँस-हँस फाग
और यह लूटूँ व्यजन - बहार ॥

सोचकर रानी हुई अधीर
फड़कने लगी अचानक बाँह।
काँपने लगा समस्त शरीर
जगी नव-असि-धारण की चाह ॥

विवश थी, बँधी हुई थी आप,
विहँसता नस-नस में उत्साह।
हृदय पर छाया था सन्ताप,
सोचती पति - आज्ञा - निर्वाह ॥

विवश थी वह करने से कर्म
झलक आया नयनों में नीर।
धर्म का होता सुस्तर बन्ध
सोचकर रानी हुई अधीर॥

यही चिन्ता थी उर में व्याप्त
शान्ति में डूबा था रनिवास।
महल का कण-कण करता नित्य
महारानी का यह उपहास॥

इसी क्षण वहाँ दासियाँ तीन
आ गईं कर जोड़े तत्काल।
देख आँखों में आया नीर
हो उठीं वे अवाक् उस काल॥

देख रानी ने उसको शीघ्र
चौंककर किया अश्रु-जल दूर।
विहँसने लगीं बैठकर स्वस्थ
छिपाती हुई हृदय का पीर॥

पूछने लगीं त्वरित वे हाल
"कहाँ है तुम लोगों का धाम?
यहाँ पर आई हो किस हेतु
और क्या तुम तीनों का नाम?"

यही है हम लोगों का धाम,
आपकी दासी हैं सिर-ताज!
यही है हम लोगों का कर्म
सजाती रहें आपका साज॥

आपकी सेवा अपना धर्म
यही है स्वर्ग यही अपवर्ग।
यही है हम लोगों का लक्ष्य
इसी पर है जीवन - उत्सर्ग॥

दासियों की सुनकर यह बात
जगा रानी में नव - उत्साह।
पूछने लगीं प्रश्न वे शीघ्र
विहँस कर लेती उनकी थाह॥

"कभी क्या वल्गा ले निज हाथ
तपाई कोमल तन को आग?
दिखाया है स्वदेश को प्यार?
कभी देखा है संगर - भाग?

सुनी हैं वीरों की जयकार?
सही है तलवारों की मार?
कभी घोड़े पर हो आरूढ़
चलाई है चमचम तलवार?

कभी की है मुद्गर से भेंट?
किया है लक्ष्य-भेद शर फेंक?
सहा है कभी घाव पर घाव?
निबाही है मरने तक टेक?

कभी मलखम्भ अखाड़े - बीच
दिखाया है तुमने पुरुषार्थ?
कभी ललनाओं का शुभ ध्येय
विहँस तूने है किया कृतार्थ?"

महारानी का सुन यह प्रश्न
दासियां बैठीं थीं चुपचाप।
प्रश्न के उत्तर में चुपचाप
रही थीं धीरे - धीरे काँप॥

व्यंग से बोली रानी शीघ्र
"जानती नृप, वाद्य या गान?
सजाकर रंग - भवन का साज
किया है दर्शक का सम्मान?"

प्रश्न यह सुनते ही तत्काल
दासियों में छाया नव - हर्ष।
जगा उन सबके तन में नव्य
अभी तक का सोया उत्कर्ष॥

हो गई रानी आगे मौन
सोचने लगी समय का फेर।
जगा अपना नारी - इतिहास
लिया क्षण में मानस को घेर॥

प्रभो! कैसे होगा उद्धार
बचेगी कैसे अपनी लाज?
देखती हूँ मैं आँखें खोल
बना नारी का है यह साज॥

मिटेगी कर्णवती की आन,
घुलेगा पन्ना का सम्मान।
धन्य नारी के गौरव - मान,
छिप रहा वीरोचित अभिमान॥

यहीं दुष्यन्त - प्रिया का धाम
गूँजता कण-कण में यह नाम।
यहीं पर पांचाली की लाज
बचा पाए छिपकर घनश्याम ॥

भजूँगी इन सतियों का नाम
पढ़ूँगी कर्मयोगी का पाठ।
बना दूँगी इस तन को राख
सजाऊँगी स्वदेश का ठाट ॥

जगाऊँगी फिर नारी - जाति
करूँगी सेना को तैयार।
चढ़ाकर मुण्डों का नव - हार
करूँगी माता का शृङ्गार ॥

भले ही हो दुःखों का घात
किन्तु नस-नस में फहरे केतु।
चढ़ाऊँगी अरि - उर का रक्त
बना नारी - सेना का सेतु ॥

भले ही हँसे गगन मुँह मोड़
समझकर यह कोरा अभिमान।
चढ़ाकर बलि - वेदी पर शीश
करूँगी मातृ - भूमि का मान ॥

वह है गगन, वही है भूमि,
हिमालय वही, विमल कैलास,
वही है रवि-शशि का भी रूप
वही निशि-दिन का सरस-विलास ॥

जगाया जा सकता है आज
पुनः सतियों का पावन - त्याग।
लगाई जा सकती है आज
पुनः पतितों के उर में आग॥

बनाकर मातृ - भूमि को मुक्त
किया जा सकता है उत्थान।
उड़ाया जा सकता है दिव्य
अन्य देशों में अरुण - निशान॥

शान्त हो गया हृदय - विक्षोभ
पुनः टूटा रानी का ध्यान।
सुनाने लगी पुनः वे शीघ्र
हृदय का अपना लक्ष्य महान॥

बढ़ेगा जिससे जग के बीच
पुनः इस भरत-खण्ड का मान।
मिलेगा जन - जन को निज स्वत्व
विहँस आवेगा सुखद - विहान॥

किंकरी नहीं, बनोगी सत्य,
सजाओ कोमल तन पर वर्म।
धरा का भार मिटाओ शीघ्र,
करो वीरों सा दुस्तर - कर्म॥

सिखाऊँगी सबको तलवार,
बनोगी सब अति कुशल सवार।
देखकर तुम लोगों का वार
मचेगा अरि-दल में चीत्कार॥

सजाए हैं जिस तन पर फूल
सजाएगा अब उसे निषंग।
चलेंगे भाले, बरछी, तीर
कटेंगे रिपु-दल के सब अंग॥

सजा जो है सुन्दर रनिवास
जहाँ करता है विभव निवास,
वहाँ अब होगा शस्त्रागार
इसी से होगा नवल-विकास॥

शपथ खाओ छोड़ोगी राग,
शपथ खाओ कर दोगी त्याग।
शपथ लो अर्पित कर निज प्राण
जगाओगी इस भू का भाग॥"

दासियाँ सुनकर ऐसी बात
हो गईं क्षण में शक्ति-समान।
गूँजने लगा हृदय में शीघ्र
जाति-गौरव का सोया गान॥

जगा अपना सोया अभिमान
जगा उर में समाज-उत्थान।
जगी युग-युग की महती आन,
जगा सतियों का जीवन-दान॥

त्वरित किंकरियो की हुंकार
जगाने लगी सुप्त-रनिवास।
शान्त हो गया कर्म-उपहास,
विहँसने लगा धर्म-मधुमास॥

"शपथ है घर के बन्दनवार,
शपथ है पति के अतुलित प्यार।
शपथ है पति-गृह के नव - हार
करूँगी माता का उद्धार॥

शपथ है मण्डप के कल-गान,
शपथ पुर-जन के कन्या-दान।
शपथ जीवन के मधुमय - फाग,
शपथ माँगों के अरुण - विधान॥

शपथ है तन के नव - शृंगार
शपथ मेंहदी के सुन्दर - रंग।
शपथ तन पर के भूषण - भार
शपथ प्रियतम का अब से संग॥

शपथ है जीवन में मधुमास,
शपथ जीवन में व्यजन-बहार।
शपथ वैभव का है उपभोग
करूँगी माता का उद्धार॥

बनेगा अभी योगिनी - वेष
सुनूँगी गीता का उपदेश।
मिटेगा जब जन-जन का क्लेश
तभी जाऊँगी प्रियतम - देश॥

सखी सुन्दर की सुन ललकार,
सुना जब काशी का अभिमान।
सखी सुन्दर की सुन हुंकार
गूँजने लगा विजय का गान॥

सुनी जब रानी ने हुंकार
दासियों का ऐसा संकल्प।
सफल होगा लख निज उपदेश
मिटा रानी का सकल विकल्प॥

लगा होने कुछ दिन पश्चात्
महारानी का रण-उपदेश।
गरजने लगा त्वरित गढ़-बीच
विपुल नारी-सेना का वेष॥

जहाँ अब तक था हास-विलास
वहाँ अब गूँज उठी हुंकार।
जहाँ था पायल का कल-नाद
वहाँ झन-झन करते हथियार॥

जहाँ था चमक रहा भुजबन्ध
राजने लगा वहाँ अब चर्म।
चमकता रहा जहाँ कौशेय
वहाँ हो गया वर्म ही वर्म॥

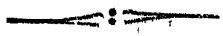

छठीं हुंकार

निशा - सुन्दरी शान्ति - सखी के
साथ कर रही थी शृङ्गार।
श्याम - बदन को जल - दर्पण में
देख रही थी बारम्बार॥

गूँथ रही नव कुन्तल में थी
उडुगण - कुसुम नवल - सुकुमार।
सजा रही थी वह कबरी में
लेकर नभ - गंगा के हार॥

चमक रहा कौषेय वस्त्र सा
विमल-चन्द्र — किरणों का तार।
बरस रहा था मृदुल - स्मित से
शिशिर-सुधा का मधु - मनुहार॥

रुक रुककर वह प्रिय हिमांशु की
देखा करती थी नव - राह।
कभी मधुर कलरव में गाती
जलधि - वीचि में अपनी चाह॥

उधर विमल प्राची से आता
पड़ा दिखाई शशि - मुख लोल।
सुखद - ज्योत्स्ना शशि - मानस में
रही नव - सुधा स्मित से घोल॥

पर न हँसी आती थी मुख से
बदन हो गया था कुछ लाल।
बता रहा था गहरी चिन्ता
रस में विष सा वह उस काल॥

पग न पड़ रहा था सीधे से
खिची आ रही चिन्ता - रेख।
हुई विकल रजनी प्रियतम का
कुँभलाया सा आनन देख॥

रंगभवन भी सजा हुआ था
फैलाता था मुक्ता - हास।
रानी के तन के आभूषण
दिखा रहे थे नवल - उजास॥

करके नव - शृङ्गार नृपति की
रही देखती सुखमय - राह।
कब प्रियतम इस छवि को देखे
विकल कर रही थी यह चाह॥

इसी बीच कुछ अनमन - मन से
आ पहुँचे भूपति तत्काल॥
चिन्ता की रेखा थी मुँह पर
आँखों के डोरे थे लाल॥

प्रियतम ने सोचा, रानी के
सम्मुख प्रकट न हो यह भाव।
एक प्राण था दो काया में
आ न सका इसलिए दुराव॥

रानी बोली निज वल्लभ से
"यह कैसी चिन्ता की रेख ?
अबतक तो सपने में भी मैं
ऐसा नहीं सकी थी देख ॥

आज न पहले - से मुसकाते
वे मानस के कोमल - भाव ।
आज न लहराते हैं चंचल
रूप - कुसुम पर वे नव - चाव ॥"

मन का भाव छिपाकर राजा
लगे विहँसने फिर तत्काल ।
हँसी - हँसी में ही बातों का
लगा फैलाने माया - जाल ॥

नृप बोले "हे प्रिये ! सदा ही
करती हो वीरों की बात ।
सखियों को घोड़े पर चढ़ना
तुम्हीं सिखाती हो दिन-रात ॥

पटा, बनेठी, अस्त्र चलाना
घोड़े पर होना आरूढ़ ।
प्रतिपल सिखलाती रहती हो
असि की सब विद्याएँ गूढ़ ॥

ऐसी शिक्षा पाकर जग में
क्या कर सकतीं वे उपयोग ?
इनको तो पति - गृह में रहकर
करना है सुख का उपभोग ॥

घर में ही है पड़ते इनको
करने नित्य अनेकों काम।
गृहिणी बनकर, शिशु - पालन कर
देती हैं पति को विश्राम॥"

प्रियतम की ये बातें सुनकर
रानी मुसकाई तत्काल।
व्यंग भाव में लगी सुनाने
कायर - मानव की मति - चाल॥

"राजपूत वीरों के रहते
ललनाओं ने ली तलवार।
शीश चढ़ाकर उनसे पहले
गई स्वर्ग को विहँस सिधार॥

रूपनगढ़ की राजसुता का
अब भी हँसता सुन्दर - देश।
नीच - पिता था चला बेचने
जिसकी लज्जा का शुभ - वेष॥

रजत - खण्ड के लिए यवन को
कन्या देनी की स्वीकार।
ऐसे पिता और माया को
अवनी-तल पर है धिक्कार॥

इसी जाति ने राज-मान या
नृप से पाने को सत्कार।
अपनी माँ-बहनों से हँस-हँस
सजा दिया मीनाबाजार॥

तब ललनाओं के गौरव की
तरणी की काँपी पतवार।
कर्णवती ने तभी उठाई
अपनी प्यासी - विकट - कटार ॥

जिस नृप के सम्मुख झुकते थे
राजाओं के शीश अपार।
कर्णवती उसकी छाती पर
चढ़ी गरजकर लिए कटार ॥

चूडावत ने क्षत्रिय होकर
पाया कायरता का गात।
बार - बार शंका की करता
हाड़ारानी से वह बात ॥

रानी ने जब देख लिया अब
नहीं त्याग का है विश्वास।
और यहाँ प्रियतम संगर में
जाने से हो रहे हताश ॥

लेकर कर में चमचम करती
रक्त-तृषित अपनी तलवार।
प्रियतम की अंजलि में अर्पित
किया त्वरित निज शीश उतार ॥

इसीलिये मैं भी कहती हूँ
सखियों को देकर तलवार।
कभी न नर बन सक पावेगा
नारी-लज्जा की पतवार ॥

जब तक तुममें उष्ण - रक्त है
तब तक समझो निज सम्मान।
नारी के पौरुष पर आश्रित
नारी का जीवन-उत्थान॥

देखो! नारी की लज्जा से
नर ने है खेला नित खेल।
और नित्य नाटकशाला में
लज्जा रखते सभी सकेल॥

देश - भक्ति का मान - दण्ड है
ललनाओं की जीवित शक्ति।
ललनाओं की सुदृढ़ भक्ति ही
विमल - देश की है शुभ - भक्ति॥

अब तो सुख के पीछे मानव
दे सकता है अपना देश।
लेकर नश्वर - वैभव जग में
सजा रहा है अपना वेष॥

नश्वर धन पर दिया गया है
झाँसी का भी पंचम अंश।
जिससे अरि का बढ़ता जाता
इस भू पर है निशि-दिन वंश॥

राजा भी तिलमिला उठे सुन
व्यंग - भरी रानी की बात।
क्रोधानल से धधक उठा वह
नृप का रेशम-भूषित गात॥

किन्तु तभी वे शान्त हो गए
छिपा रह गया तन का रोष।
रोम-रोम भी शान्त हो गया
पर न हुआ उनको परितोष॥

पुनः विहँसकर भूपति बोले
"प्रिया! नहीं यह भय का हेतु।
पंचम-अंश राज्य का मुझसे
अरि से मैत्री का है सेतु॥

अभी बहुत है राज्य बचा है!
कर लो यदि सुख से उपभोग।
जीवन की आवश्यकता का
प्रमुदित होकर करो प्रयोग॥

राज्य-अंश के देने से है
मेरे उर में भी आघात।
किन्तु कुटिल-भवितव्य प्रबल है
वह न किसी के वश की बात॥

आगे बात न वह सुन पायी
लगी हृदय में गहरी चोट।
मानव होकर स्वामी भी हैं
लेते कायरता की ओट॥

फड़क उठे क्षण में रानी के
कमल-बदन के कोमल पात।
उर-सागर में ऊर्मि जगी फिर
इन बातों का खा आघात॥

करके रानी क्षमा - याचना
कहने लगी हृदय की बात।
जिस हिम के आघात से था
जला जा रहा उर - जलजात ॥

"प्रभो! आपका किया शत्रु ने
हँसकर जो यह है सम्मान,
सोच रहे हैं इसी मान से
होवेगा अपना उत्थान?

यह तो गुड़ में विष के जैसा
दिया गया घातक - सम्मान।
रिपु की नीति काम कर बैठी
अब सहना होगा अपमान ॥

गगन हँस रहा, रोती अवनी,
आप हुए कैसे अनजान।
कभी नहीं अरि - अनल साथ में
पा सकता तिनका उत्थान ॥

नृप की पुनः चेतना जागी
तब कैसे अब हो सब काम?
जिससे बन्धन-कड़ियाँ टूटें,
निज प्रदेश का रहे सुनाम ॥"

प्रिय पति से यह सुनकर रानी
कहने लगी विहँस तत्काल—
"फेरें हाथ गरज मूछों पर
फिर माई के प्यारे - लाल ॥

जगे पुनः केसरिया बाना
हय पर दौड़े कुशल - सवार।
युद्ध छोड़कर चमचम चमकें
बरछी, भाले, तीर, कटार॥

रनिवासों में रानी जागे
तजकर अपना भोग-विलास।
रंग - भवन के कक्ष-कक्ष में
हो हथियारों का ही हास॥

वे भी अपने कोमल - कर को
कर लें अब से वज्र - समान।
चला सकें वे शूर-वीर सी
बरछी, भाले तीर, कमान॥

प्रभुवर! निद्रा तज जगने से
हो सकता अब है उत्थान।
सत्य मार्ग पर ही चलने से
होगा वीर - देश - सम्मान॥"

बतरस में वे डूब गए थे
रहा निशा का उन्हें न ज्ञान।
अन्तरिक्ष की अगणित आँखें
होने लगीं शीघ्र ही म्लान॥

रंग - भवन से भूपति निकले
कामदार पट कटि से खोल।
उधर भवन की निपुण - सारिका
उठी प्रजापति की जय बोल॥

प्रणय-सरोवर में ऐसे ही
हँसते थे नव - रुचिर - विलास।
हृदय-मुकुल में सुधा भरी थी
मिटती जाती थी सब प्यास॥

बिहँस रहा था कुक्षि प्रान्त में
रानी का भावी उत्थान।
मार्गशीर्ष की लिए कौमुदी
हुई प्रकट हर्षद - सन्तान॥

दीन-दुखी को मिला भवन से
उत्सव में मनमाना दान।
खान-पान या राग-रंग से
किया गया सबका सम्मान॥

निशा पहनती रही विहँसकर
दिन का सुखदायक परिधान।
हँसता हुआ दिवस सबको था
लगता पल, क्षण, घड़ी समान॥

अरि जो बैठे थे झाँसी पर
लगा - लगाकर वंचक घात।
पहुँचा उनके मर्मस्थल पर
अन्तक सा गहरा आघात॥

पाया यह सन्देश उन्होंने
झाँसी का है जागा त्याग।
उनके हँसते अभिलाषों को
लगी जलाने जी की आग॥

सातवीं हुंकार

प्राची के स्वर्णिम अंचल पर
बालक रवि था खेल रहा।
शान्ति सुधा में विमल प्रभा वह
विहँस-विहँस था घोल रहा॥

तरु-तरु के रंजित मस्तक पर
खग - कुल बैठा बोल रहा।
मधु से सिक्त सघन - वन-वन में
मलयवायु था डोल रहा॥

प्रकृति वधू थी हरित - वसन पर
स्वर्णिम चादर ओढ़ रही।
ज्योति गगन-अवनी-तल को थी
कनक-तन्तु से जोड़ रही॥

कमल-कोष में बन्द भृंङ्गगण
खुलते ही जगकर निकले।
धूलि-धूसरित गुनगुन गाते
निज छत्तों की ओर चले॥

थिरक उठीं जल-तल पर लहरें
विहँस पुलिन की ओर चलीं।
भानु - रश्मियाँ अर्घ्य - वारि को
सत्वर - सगति बटोर चलीं॥

खेल रहा था नन्हाँ सा शिशु
विमल प्रभा थी मुसकाती।
वातायन से कनक-रश्मि भी
आकर नित थी दुलराती॥

रानी कभी उठाकर शिशु को
कन्धे पर थी बैठाती।
कभी सुलाकर पलने पर वह
चुम्बन ले-लेकर गाती॥

चुटकी बजा-बजाकर कहती
"लाल! बड़े हो जाओ तुम।
वीर शिवा, राणा प्रताप सा
कर्मक्षेत्र अपनाओ तुम॥

पार्थ-पुत्र से होकर प्यारे!
नित्य अनीति मिटाओ तुम।
माता का शृङ्गार पुनः हे
लाल! प्रसन्न सजाओ तुम॥

बरछी, भाले, तीर, कटारी
फिर ले विहँस जगाओ तुम।
लाल! धरा पर पूर्वकाल सा
गौरव-गान सुनाओ तुम॥"

यही गीत गा-गाकर रानी
शिशु को पुनः उठाती थी।
आँचल से ढँक, दूध पिलाकर
चुम्बन-सहित सुलाती थी॥

कभी शान्त - मुद्रा में कहती
गीता इसे पढ़ाऊँगी।
छोटेपन से ही घोड़े पर
चढ़ना इसे सिखाऊँगी॥

बाला गुरु का दिया हुआ वह
मन्त्र इसे बतलाऊँगी।
छोटी सी तलवार थमाकर
लड़ना इसे सिखाऊँगी॥

समर-बीच अरि की छाती-पर
चढ़ना इसे बताऊँगी॥
संकट में घिर जाने पर भी
बढ़ना इसे सिखाऊँगी॥

इसे सुनाऊँगी गाथा मैं
कुरुक्षेत्र के वीरों की।
सत्य-स्वत्व के लिए स्वतः
सिर देनेवाले धीरों की॥

यह भी इसे बता दूँगी मैं
युद्ध - सिन्धु तरना होगा।
निज स्वदेश की रक्षा के हित
उर-शोणित भरना होगा॥

चढ़ना होगा नभ - मस्तक पर
बढ़ना तप्त अँगारों पर।
ज्वाला बन हहराना होगा
लप - लप - लप तलवारों पर॥

अरि शोणित से रंजित चुँदरी
देवी को देनी होगी।
परम्परित वीरत्व - भाव की
शिक्षा भी लेनी होगी ॥"

सदा ललककर हाथ बढ़ाकर
अम्बर को छूने बढ़ना।
मन में मौन यती सा कुछ-कुछ
निर्निमेष पढ़ते रहना ॥

अनुभवों के नव - पलने पर
चपल - भाव से मुसकाना।
स्नेह-सरोवर के जल - तल पर
मुकुल - सदृश नित लहराना ॥"

कभी नहीं मन की आकांक्षा
पूर्ण किसी की होती है।
वही विश्व में होता है जो
प्रभु की इच्छा होती है ॥

प्रकृति सदा यह सोचा करती
ऋतु बसन्त ही बनी रहे।
सुषमा से मण्डित नव - कलिका
मधु - सौरभ से सनी रहे ॥

सदा बोलते रहें द्रुमों पर
घूम - घूम पिक मतवाले।
भरे रहें मधु से सुमनों के
नवल - रुचिर - रंजित - प्याले ॥

सदा नाचती रहें तितलियाँ
पहने सतरंगी साड़ी।
रहें झूमती मुदित-पवन में
फूलों की क्यारी-क्यारी॥

पर वसन्त बीतते धरा पर
झंझावात गरजता है।
नभ से वसुधा के अंचल पर
निशि-दिन अनल बरसता है॥

सिसक पड़ा नभ, काँपी दिशाएँ,
लगीं बिलखने महरानी।
तृण से लेकर अचल-दृगों में
छलक पड़ा छल-छल पानी॥

हाय! लाल का तीन-मास में
शून्य गोद करके जाना।
वंश-दीप पूजा से पहले
झिलमिल करके बुझ जाना॥

कौन आँख का तारा बनकर
विमल प्रकाश दिखावेगा?
कौन हाथ की लकुटी बनकर
पथ पर मुझे बढ़ावेगा?

तब मैं लाल कहूँगी किसको
माँ कह कौन पुकारेगा?
श्रवणकुमार-सदृश काँवर पर
ले कर कौन उबारेगा?

आठवीं हुंकार

था विश्व-कला की जननी का
पावन सुहाग नित भासमान।
जिससे झाँसी के कलित - धाम
चित्रित लगते थे कान्तिमान॥

नीलाम्बर का था नव - वितान
नीचे संसृति गाती विहाग॥
लेकर पिचकारी बाल सूर्य
था खेल रहा हँस रुचिर - फाग॥

नव - धवल - भीत पर चित्रित थे
सीता - सहचर अभिराम राम।
थी कुरुक्षेत्र की समर - भूमि
प्रमुदित थे रथ पर पार्थ - श्याम॥

रवि - तनया के शोभित तट पर
व्यापक करील के सघन - कुञ्ज।
जिसमें बहती थी सुधा - धार
पी जिसे झूमते भृंग - पुञ्ज॥

नव-शिशु सम काशी विहँस - विहँस
भरती सुरसरि की विमल गोद।
जिसका अनुपम सौन्दर्य देख
नभ निराकार भरता प्रमोद॥

रथ पर राजा दुष्यन्त मुदित
खेलने जा रहे थे शिकार।
तापस - बाला थी टहल रही
ऋषि का आश्रम था निर्विकार॥

प्रमुदित हरिणी सहचर समेत
लम्बी छलाँग थी रही मार।
रथ के घोड़ों की गति असीम
थी भरी चित्र में नवाकार॥

कन्धों पर काँवर लिए श्रवण
जा रहे देखने तीर्थराज।
वे मातृ - पितृ की विमल भक्ति
का सजा रहे थे अमिट साज॥

इन रङ्ग - बिरंगे चित्रों से
चमचमा रही थी नवल - भीत।
है चित्रकार वे परम धन्य
भर दिया चित्र में रस अतीत॥

क्या ही सुन्दर है विहँस रहा
आश्रम - सुमनों का सुखद साथ।
जी में होता जी-भर चूमूँ
उस चित्रकार के युगल हाथ॥

यद्यपि चित्रों पर रानी का
कुछ ध्यान अनोखा अड़ा रहा।
पर चिन्ताओं की लपटों का
था ताप हृदय पर चढ़ा रहा॥

मन में रानी थी सोच रहीं
कैसा सशक्त है विधि - विधान।
ये सभी शक्तियाँ आज तलक
हैं बनी विश्व में मूर्त्तिमान॥

वनवासी, तपसी, राम मौन
शुचिता - गीता के श्याम मौन।
शोणित से रंजित कुरुक्षेत्र
वीरों का ले बलिदान मौन॥

फारस - ईरान तलक फैला
जिसका सुखदायक - विमल - साज,
वह भरत - खण्ड होकर हताश
है पड़ा भूमि पर मौन आज॥

मथुरा, वृन्दावन, बरसाना,
रस के आगर ब्रज-धाम मौन।
यमुना - तट के नव - सघन - कुञ्ज
हैं पूछ रहे क्यों श्याम मौन?

वरुणा की शान्त कछार मौन,
विज्ञान, ज्ञान, तप, ध्यान मौन।
जिसमें मरना है स्वर्ग - तुल्य
उस काशी के अभिमान मौन?

रत्नाकर नभ से पूछ रहा
क्यों मेरे चारों धाम मौन?
क्यों चित्रकूट के राम मौन
गीता का उज्ज्वल ज्ञान मौन?

ले वीर सिकन्दर लौट पड़ा
जिस आर्य - भूमि से ज्ञान मौन।
जो कण - कण में था गरज रहा
वह वीरोचित अभिमान मौन॥

है मौन - मौन अब सिसक रहा
यह वीर - भूमि मेवाड आज।
जिसकी छाती पर फैल रहा
है नीरवता का त्रस्त - साज॥

क्यों सत्यव्रत भारत - सपूत
राणा प्रताप का गान मौन?
क्यो केसरिया बाना धूमिल,
क्यों वीरों का सम्मान मौन?

जिसने रवि के रथ को रोका
वह सती सांण्डली आज मौन।
पति का उज्ज्वल आदर्श मौन
दाम्पत्य प्रेम का साज मौन॥

जो निराकार नभ से आकर
साकेत - भूमि पर था खेला।
जिसने पथ-पथ पर लगा दिया
नव ऋद्धि - सिद्धियों का मेला॥

वे निराकार साकार बने
फिर निराकार हो गए मौन।
है कर्म - ज्ञान में गूँज रहा
अब भक्ति - भाव में कौन - कौन?

मँझधार लहर में छोड नाव
चिर निद्रा में नृप हुए मौन।
झंझा - झकोर - गर्जन में अब
देखें ढिग आते कौन - कौन ॥

आशा का पथ भी छूट चला
पथ में लहराता अन्धकार।
फिर भी नभ की नीली - चादर
ओढ़े माता करती दुलार ॥

नृप के रहते अँगरेजो की
थी कभी न गलती रही दाल।
वे आज समझकर निराधार
फैलाते हैं निज कपट-जाल ॥

पर यह न हृदय हिलनेवाला
अरि की कैसी भी हो न चाल।
थरथरा उठेगा सम्मुख अब
जग का भीषण भी महाकाल ॥

जब लिया हुआ यह गोद - पुत्र
डलहौजी को होता अमान्य।
जब यह कृतज्ञता का बदला
फिर हम ही क्यों होवें वदान्य ?

भारत का यह आदर्श नहीं
ऋषियों का है यह पुण्य-धाम।
युग - युग से ही सब देशों के
सद्धर्म - कर्म की विधि - ललाम ॥

इससे न कभी अरि पा सकता
यह झाँसी का अति विशद - राज।
इसके पद पर झुक जायेंगे
निश्चय रिपु-दल के शीश-ताज ॥

यह्निनी गगन कहती है
आवेगा जौहर से विहान।
पति के तन के ही साथ - साथ
जलकर मरना ही है महान ॥

मैं तो कहती हूँ उसने ही
दिखलाया अबला का स्वरूप।
क्या कर में ले तलवार नहीं
बन सकती थी ज्वाला - स्वरूप ?

अति कायरता का पाठ हमें
है पढ़ा रही वह दिव्य मूर्ति।
यदि अनायास मिल जाय कहीं
स्वीकार्य नहीं ऐसी सुकीर्ति ॥

मुझको करता है सावधान
देवलदेवी का शुचि - सुहाग।
आदर्श चमाचम दिखलाता
है रूपकुमारी का विराग ॥

अव्यक्त रूप में दिखलाती
मुण्डों से भूतल पाट-पाट।
तलवार नचाती है वीरा
वीरों की ग्रीवा काट-काट ॥

कहती है कर्णावती प्रतिक्षण
कर की कटार को रोक-रोक।
कुन्तों से अपनी रक्षा कर
अरि के सीने में भोंक-भोंक॥

ताराबाई की अमल ज्योति
हर रही मार्ग का अन्धकार।
कह रही इसी पथ पर चलकर
माता का होवेगा सिंगार॥

अतएव दुर्ग की सीमा को
करती है दुर्गावती प्रखर।
जो गरज-गरजकर बता रही
है यह शरीर केवल नश्वर॥

हाडारानी का हाड़-हाड़
अर्पण करता निज शीश काट।
चूड़ावत का है खोल रहा
नव-ज्ञान-मोह को काट-छाँट॥

है अमर-लोक से सारन्धा
करती है मुझको सावधान।
अरि को मूली सम काट-काट
गाओ भूतल पर विजय-गान॥

नभ की छाती पर चमक रहे
हैं ललनाओं के नव-विधान।
ऐसे पथ पर ही चलने से
जागेगा लज्जा का विहान॥

यह ज्ञान प्राप्त कर ले तुरन्त
पौरुष है कितना अभी शेष।
जिसके बल पर चिर-निद्रा से
जग सकता है यह वीर-देश॥

रिपु को न गन्ध कुछ लग पावे
है संकट का यह क्षण निदान।
इस मिस से निर्जीवों में भी
मैं कुछ डालूँगी नई-जान॥

रानी ने सोचा, करना है
दामोदर का यज्ञोपवीत।
फिर कभी नहीं मिल सकता है
इससे बढ़कर अवसर पुनीत॥

इसलिए निमन्त्रण ले-लेकर
सब ठौर-ठौर पर गए दूत।
जिसके आशय को समझ-समझ
हो गए सजग भारत-सपूत॥

नवीं हुंकार

पावस की सरस - सुवेला थी
बह रहा पवन था सर, सर, सर।
गिरिवर की पुलकित छाती से
निर्झर बहता था झर, झर, झर॥

झिलमिल झीनी - बूँदें नभ से
अवनी पर झरती थीं झर, झर।
लोनी - लतिका लावण्यमयी
लहराकर मन लेती थी हर॥

मन्दिर के घण्टों के रव से
दिक् काँप रही थी थर, थर, थर।
नित अन्तरिक्ष में विमल - केतु
अविरल उड़ता था फर, फर, फर,॥

झुक उमड़ - घुमड़ घनघोर घटा
घड़घड़ा रही थी घड़, घड़, घड़।
क्षण सघन - घटा को चीर तडित्
तडतडा रही थी तड़, तड़, तड़,॥

थी महामहीधर के उर में
प्रतिपल धड़कन होती धड़, धड़।
अवनी-तल की भी नीरवता
फड़फड़ा रही थी फड़, फड़, फड़॥

था शिला - खण्ड पर मोर मगन
नभ-ओर देखकर नाच रहा।
बन के पथरीले वन - पथ पर
था भरता हरिण कुलाँच रहा॥

सर-सरिता का पुलकित मानस
हर्षित होकर था डोल रहा।
नव आम्र-मंजरी में बैठा
पिक कुहू - कुहू था बोल रहा॥

रक्तिम - किसलय की रसना से
तरुवर शीतल - जल पीते थे।
जल जन्तु जलाशय में सुख से
जल-क्रीडा करते - जीते थे॥

यह दृश्य देखती थी रानी
कर रही पर्व की तैयारी।
झाँसी के कण-कण में प्रतिपल
थी खेल रही सुषमा न्यारी॥

जलधर क्षण भर रुककर गढ़ से
कुछ कहते थे सन्देश नया।
फिर हर्षित हो बढ़ते आगे
लेकर उसका आदेश नया॥

आमंत्रित अतिथि सभी आए
सज राजे - महराजे आए।
यज्ञोपवीत के अवसर पर
सरदार ठाट साजे आए॥

केवल निज़ाम ही ऐसा था
जो इस अवसर पर दूर रहा।
मायामय भोग-विलासों में
पीकर मदिरा में चूर रहा॥

उसको क्या चिन्ता थी रिपु के
उन द्वेष-भरी हुंकारों की।
पशुवत् उनके व्यवहारों की,
अन्यायी की फुफकारों की॥

नव-अरुण-कपोलों में भूला
था अति प्रमत्त-पागल-निजाम।
होकर नितान्त वासना-मत्त
वह भूल गया था काम-धाम॥

शुभ लग्न-बीच दामोदर का
हो गया जनेऊ रच-रचकर।
समुचित सबका सत्कार हुआ
बैठे सब राजे सज-सजकर॥

यज्ञोपवीत का उत्सव तो
केवल अति व्याज बहाना था।
अरि की आँखों में धूल झोंक
भारत को पुनः जगाना था॥

बस एक छत्र के नीचे मिल
कुछ अपनी बात सुनानी थी।
कितना पौरुष है अभी शेष
इसकी ही थाह लगानी थी॥

रिपु दल-कड़ियों को तोड़-तोड़
माता को मुक्त कराना था।
अपना प्रसिद्ध वह गौरव ध्वज
फिर से जग पर फहराना था॥

निज धर्म-कर्म की रक्षा का
स्वर अति स्वतन्त्र भड़काना था।
आराध्य भवानी का रिपु के
मुण्डों से मान बढ़ाना था॥

उर-उर के छिपे विचारों को
खुलकर सब आज सुनाना था।
बस एक पन्थ पर चल-चलकर
स्वातन्त्र्य गीत ही गाना था॥

रानी धीरे ले वीर भाव
आ राज-सभा में खड़ी हुई।
साकार भवानी नभ से आ
मानो भूतल पर बड़ी हुई॥

आँखों से चिनगारी चमकी
वाणी में भभकी महाज्वाल।
जन-जन के उर में कसक उठा
जीवन-अर्पण का मधुर-साल॥

बोली रानी—'हे वीरों! अब
यह समय नहीं है सोने का।
है समय हृदय के शोणित से
जननी के पद को धोने का॥

अब भीष्म-प्रतिज्ञा के समान
प्रणकर्त्ता ही है होने का।
दुःशासन अरि का हृदय चीर
द्रौपदी-केश है धोने का॥

निर्मम-रिपु-गण को काट-काट
शास्त्रास्त्र बीच है जीने का।
ऋषिवर कुम्भज सम गण्डुलि पर
हँस समर-सिन्धु है पीने का॥

यदि अरि-दल बने सघन-बन तो
दावानल बन जाने का है।
जयकेतु हिमालय के सिर पर
हँस-हँसकर फहराने का है॥

अम्बर में मँड़राने का है,
भूतल पर लहराने का है।
नव स्वतन्त्रता के मन्दिर के
घण्टों को घहराने का है॥

पर्वत को थर्राने का है,
कण-कण को फड़काने का है।
इस समर-बीच हुंकारों से
अरि-दिग्गज दहलने का है॥

नद, नदी, कूप, सर-बापी को
शोणित से लहराने का है।
नभ की नीली-चादर को भी
भूतल पर फहराने का है॥

यह समय नहीं रनिवासों में
काकली बोल सुनने का है ॥
अब स्वतन्त्रता का समर - बीच
परिधान विहँस बुनने का ॥

अब समय आ गया है रिपु को
संगर का पाठ पढ़ाने का।
माता के मन्दिर में हँसकर
अब प्राण - प्रसून चढ़ाने का ॥

भूले न कभी यह वीर वेष
वीरों में भरी जवानी है ॥
कण - कण में गूँज रही प्रतिपल
राणा की गाथा मानी है ॥

हैं अरावली गिरि खड़ा अभी
ऐसा पावन है दान कहाँ ?
चौहत्तर मन उपवीतों का
करता है जो सम्मान यहाँ ॥

सुनकर ओजस्वी - वीर - शब्द
सारा समाज तमतमा उठा।
दीवान जवाहरसिंह उठे
कटि का कृपाण झमझमा उठा ॥

कर नमस्कार रणचण्डी को
फिर वीर भाव से वे बोले।
क्षण शान्ति सुधा के प्याले में
वीरत्व - तत्व के रस घोले ॥

हे देवि! न भय है मुझको अब
रिपु - दल की विकट कटारों का।
मुझको है भवन जलाना अब
अरि - दल के अत्याचारों का॥

मैं तरस रहा हूँ उस दिन को
जब भरत - खण्ड पावन होगा।
अरि - दल के उर के शोणित से
भारत पर फिर सावन होगा॥

माता के धन से पले हुए
नश्वर तन का अर्पण होगा।
मानस के गर्म लहू से जब
पितरों का नव - तर्पण होगा॥

रघुनाथसिंह ने भी तत्क्षण
पद - रज ले दिव्य भवानी के।
रख दिये चमकते चन्द्रहास
सम्मुख झाँसी की रानी के॥

बोले "हे माता! इसको अब
गंगा - जल से नहलाना है।
ले आशीर्वाद भवानी का
अरि-शोणित से लहराना है॥"

रानी ने कहा 'सखी सुन्दर!
सत्वर तुम गंगा - जल लाओ।
इन नागिन सी तलवारों को
पढ़ वीर - मंत्र अब नहलाओ॥"

पर उन वीरों का आग्रह था
माता निज कर से नहलावें।
नहला - नहला तलवारों को
स्वातंत्र्य मंत्र भी बतलावें॥

रानी ने लेकर पावन जल
तपती असि को क्षण नहलाया।
उन भरतखण्ड के वीरों को
जय - मंत्र विहँस कर बतलाया॥

उस जय-निनाद से एक साथ
गढ़ का कण-कण दमदमा उठा।
उन बिजली सी तलवारों से
क्षण राजभवन चमचमा उठा॥

पर राजे - रजवाड़े जो थे
बैठे रह गये न बोल सके।
उन वीर - मंत्र के साथ तनिक
वे जीभ न अपनी खोल सके॥

जागी न स्फूर्ति उनके मन में
वे मूर्तिमान ही अड़े रहे।
अपने - अपने नश्वर पद की
चिन्ता में थे वे पड़े रहे॥

थी विहँस प्रतीची खोल रही
अपने भवनों का स्वर्ण - द्वार।
जिसमें बैठी सन्ध्या - बाला
भरती कबरी में रत्न - सार॥

कर प्राण - प्रिया का आलिंगन
दिन - नायक भी हो गए मौन।
हो गई विसर्जित राज - सभा
गढ़ साथ - साथ हो गया मौन॥

नभ का सब साज विसर्जित था
उड़ चले विहग निज नीड़ - ओर।
तिमिरांचल में सो गए सभी
थे गिरि - गह्वर, वन, भूमि - छोर॥

दसवीं हुंकार

बीबीगढ़ में अंगरेजों ने
अनाचार यह किया महान।
मृत - गोरों का बदला लेने
घृणित रूप से किया विधान॥

पकड - पकड़कर श्रेष्ठ द्विजों को
चटवाया मृत - शोणित लाल।
स्वच्छ कराकर उनसे ही फिर
दिया अग्नि में उनको डाल॥

अभी कह रहा अजनाले का
गुम्बद करुणामय आख्यान।
जिसमें अरि ने बन्द किया था
छाछठ - बच्चों को नादान॥

वे हिन्दू - कुल - दीप - उजाले
माताओं के भोले - लाल।
बिना वायु के तड़प - तड़पकर
निशि में स्वर्ग गये तत्काल॥

देख शत्रुओं का बच्चों पर
ऐसा भीषण - अत्याचार।
मातृ - भूमि रोयी श्यामा भर
हा सुत! कहकर हृदय विदार॥

झूठी - काल - कोठरी का वे
हमें सिखाते है इतिहास।
किन्तु उन्होंने छिपा लिया क्यों
अजनाले का क्रूर - विलास ?

अभी फरूखाबाद ले रहा
जमी नवाबी का है नाम।
जहाँ रो पड़ा फूट - फूटकर
अरि -सम्मुख मजहब इस्लाम ॥

पकड़ लिया रिपु ने नवाब को
प्राण-दण्ड का किया विधान।
तन पर मली - वराह-बसा फिर
ली फाँसी से उनकी जान॥

अवध बिलखकर दिखा रहा है
जली हुई तन पर की आग।
जहाँ शत्रु ने माँ - बहनों की
लज्जा से खेला था फाग ॥

लाज न बचने के अवसर पर
देख शत्रु का अत्याचार॥
बेगम हजरतमहल शस्त्र ले
हुई वाजि पर शीघ्र सवार ॥

विप्लव - दल के आगे - आगे
लेकर नागिन सी तलवार।
अंगरेजों का शीश काटती
गरज रही थी वारम्बार ॥

यद्यपि बहुत न वह टिक पायी
किन्तु दिखाया जीवन - सार।
निज गौरव के पावन - पथ पर
रक्खा पावन - शीश उतार॥

बर्मा के जंगल में अब भी
गूँज रही है यह आवाज।
हे मानव! तुम भूल न जाना
यहीं छिपा है तेरा ताज॥

यहीं कहीं पर छिपा हुआ है
तेरा वह अन्तिम सम्राट्।
फूँक दिया था जिसने जन-हित
अपना नश्वर - वैभव - ठाट॥

इसी भूमि की छाती पर है
शोणित से रंजित रंगून।
सुनकर जिसकी हुंकारों को
गरम हो रहा अब भी खून॥

स्वतंत्रता के वीर पुत्र का
यहीं सो रहा शान्त मजार।
बता रहा जो अंगरेजों का
गरज - गरज पशुवत व्यवहार॥

बन्दी हुए शत्रु के छल से
मातृ - भूमि के चारों लाल।
जो स्वतन्त्रता के नारे पर
हँस - हँसकर देते थे ताल॥

अंगरेजों ने जान - बूझकर
किया दुष्टता - कार्य महान।
अन्त समय में निज गोली का
उन्हें बनाया तीक्ष्ण - निशान॥

पूज्य पिता के सम्मुख चारों
पुत्रों का ला रक्खा शीश।
और कहा 'लो शाह! तुम्हारी
कुर्बानी की है यह फ़ीस।"

सुनकर यह सन्देश शाह का
बदन हुआ दिनकर सम लाल।
पुनः हँस पड़े देख सुतों का
सिर पावन - शोणित से लाल॥

गरज पड़ा अस्सी वत्सर का
अस्थि - चर्ममय वह फौलाद।
"इसी तरह वालिद के सम्मुख
आती तैमूरी औलाद॥

जर्जर काया शांत हो गई
नभ ने दुहराया वरदान!
इससे बढ़कर कौन करेगा
अपने गौरव का सम्मान?

सुनती थी जब रानी अरि के
किए हुए ये अत्याचार,
और देखती थी आँखों से
अँगरेजों का यह व्यवहार॥

जाति-धर्म पर ऐसा संकट
माँ - बहनों का हाहाकार।
जलते हुए घरों के भीतर
बूढ़े-बच्चों का चीत्कार॥

जलती हुई लाज की होली
जलता - मिटता अपना देश।
अपने बच्चों के शोणित से
रँगा हुआ माता का वेष॥

राजाओं का राज्य हड़पकर
कर लेना निज शक्ति-अधीन।
जिनका लक्ष्य यही अवनी पर
रहे न कोई घर स्वाधीन॥

रहे न सिर पर अब से चोटी,
रहे न गीता का भी ध्यान।
रहे न मस्तक पर चन्दन का
चमचम करता रुचिर - निशान॥

रहे न हिन्दू - मुसलिमपन का
जन - जन में आचार-विचार।
रहे न अब से हृदय-हृदय में
भाई - भाई का व्यवहार॥

भूल जायँ सब मन्त्र-ऋचाएँ
भूले कलमा और कुरान।
भूले सांख्य - योग का पढ़ना
भूले पोथी और पुरान॥

रहे न नारी को स्वामी का
पति को नारी का विश्वास।
जगी रहे जन्मद को सुत की,
सुत को तात-रक्त की प्यास॥

भूलें हिन्दू जप, तप, व्रत को
मुस्लिम रोज़ा और नमाज़।
मसजिद में सूखे पैगम्बर
मन्दिर में रोएँ सुरराज॥

तब वह कहती थी हाथों में
लेकर नागिन सी तलवार।
अरि-दल का उर चीर-चीरकर
हरना है भू का यह भार॥

सखियों! सावधान हो जाओ
करना है माँ का सम्मान।
अरि-शोणित से धरणी धोकर
करना है मुण्डों का दान॥

ग्यारहवीं हुंकार

पावस की हरियाली पर
नभ झर-झर बरस रहा था।
डाली पर प्यासा चातक
पानी को तरस रहा था॥

बैठी थी पंख फुलाकर
तरु पर नव विहगावलियाँ।
लतिका कोमल - दल - कर से
रच रही चाँन्द्र की लड़ियाँ॥

फल-फूलों के भूषण से
सज्जित थी वन की रानी।
इठलाती थी अवनी पर
नदियों की नई जवानी॥

उनको न ज्ञान था अपनी
मर्यादा के कूलों का।
था तुहिन-विन्दु से आवृत
परिधान हरित - फूलों का॥

गरमी से व्याकुल तरु-तरु
किसलय की जीभ निकाले।
पी रहे मगन जल, तन पर
थे हरित - वसन वे डाले॥

करती थीं खड़ी जुगाली
गायें खुर - पूँछ समेटे।
बैठे थे काँप रहे थे
चरवाहे बाँह लपेटे॥

तन झाड़ - झाड़कर बछड़े
माँ से सटते जाते थे।
अवनी के हरित - वसन पर
सरवर भी लहराते थे॥

बैठे किसान गाते थे
तिनकों की झोपड़ियों में।
गदला जल भरा हुआ था
पशुओं की खोपड़ियों में॥

आते ग्रामीण मगन - हो
बोझे सिर पर ले-लेकर।
थे खड़े रोंगटे फूले
जल - सीकर से तर होकर॥

जल - पूरित लहराती था
खेतों की क्यारी - क्यारी।
भू शस्य श्यामला तन पर
ओढ़े थी सुन्दर - साड़ी॥

रानी के तन पर भूषित
सुन्दर - सित - पाटाम्बर था।
उसके ऊपर से सादा
नव, धवल, रुचिर, ग्रावर था॥

बैठी थीं आसन मारे
मन में नव - भाव जगा था।
जिनकी उलझन - सुलझन में
घण्टों से ध्यान लगा था॥

वे सोच रही थी मन में
पहले जन - कष्ट हरूँगी।
उस डाकू सागर को मैं
जीवित ही अब पकड़ूँगी॥

यदि लेकर बटमारों को
चाहेगा मुझसे अड़ना।
तो वहाँ पड़ेगा हमको
सखियों को लेकर लड़ना॥

तो प्रथम इन्हें बतला दूँ
जो आगे अब है करना।
बरवासागर में डाकू
सागर से है अब लड़ना॥

थीं सुन्दर - सुन्दर सखियाँ
बैठीं अपनी - अंचल पर।
लिख रहा पवन था भावी
आदेश विटप - दल - दल पर।

बोली रानी—'हे सखियों!
अब है करवाल उठाना।
बरवा सागर में चलकर
है असि को रक्त पिलाना॥

सखियाँ सुनकर रानी का
आदेश विनत हो बोली—
"है मौत भला किस रिपु के
सिर पर यह सहसा डोली?"

रानी क्षण विहँस उठी सुन
सखियों की ऐसी वाणी।
वे लगीं बताने रिपु को
जिससे कम्पित थे प्राणी॥

है सागर सिंह वहाँ पर
जो डाला करता डाका।
बरबा सागर सा कोमल
है कँपा दिया उर माँ का॥

अब चलकर उसको क्षण में
है रण का पाठ पढ़ाना।
बटमारों की हत्या कर
जाते जी उसको लाना॥

इसलिये न हो अब देरी
यह समय न है खोने का।
जन-हित अरि के शोणित से
है हाथ त्वरित धोने का॥

'तो सुन्दर! शीघ्र कहो तुम
रघुनाथ सिंह से जाकर।
आवें झाँसी में तत्क्षण
सेना को पूर्ण सजाकर।

चल दी उस ओर जहाँ पर
वह रहता था सेनानी।
प्रातः की पूजा करने
बैठी आसन पर रानी॥

शोभित ऊषा की लाली
प्राची में विहँस रही थी।
सुमनों की डाली-डाली
फूलों से महँक रही थी॥

शिशु-हंस किरण-माला से
नव-कुंकुम-लेप लगाता।
गिरिराज-धवल-मस्तक पर
था स्वर्ण-मुकुट मुसकाता॥

सुषमा बैठी कोई से
पंकज पर छा जाने को।
थी देख रही पथ स्वस्तिक
दधि-स्वर्ण-कलश आने को।

त्यों ही प्राची ने रक्खा
सोने का कलश लाकर।
चल दी निज रम्य-भवन को
छवि-सर में मुदित नहाकर॥

पथ मंगलमय होते ही
संसृति के प्राणी डोले।
घर से निकले चरवाहे
अपनी-अपनी गायें ले॥

किरणों ने झाड़ू दे-दे
नभ - घन को दूर हटाया।
अपनी सुषमा - मणियों को
अम्बर में मुदित बिछाया॥

क्षण में निकले झाँसी से
हथियार लिये सेनानी।
सखियाँ पीछे - पीछे थीं
आगे झाँसी की रानी॥

घोड़े हिनना - हिननाकर
निज कौशल दिखलाते थे।
रवि की किरणों में कुन्तल
वीरों के लहराते थे॥

बढ़ती जाती थी सखियाँ
क्षण प्रलय मचानेवाली।
सम्मुख फुफकार रही थी
बेतवा नदी मतवाली॥

कहती थी इठलाती हो
लेकर यह नई जवानी।
साहस हो तो अब रोको
मेरी यह गति मस्तानी॥

रुक गए पुलिन पर घोड़े
मीलों तक फैला जल था।
ललकार रही थी तटिनी
पड़ता न दिखाई थल था॥

उत्ताल तरंगे ऊपर
उठ - उठकर गरज रहीं थीं।
कोई न करे दुस्साहस
मानो वें बरज रही थीं॥

तट पर के महाविटप भी
सोते जाते थे जल पर।
हो रहा प्रलय-नर्तन था
उस वनस्थली के तल पर।

पवि सम पाषाण कगारा
यो टूट - टूट गिरता था।
उनका वह भीषण क्रन्दन
उर - उर में भय भरता था॥

बहता था प्रखर - पवन भी
पत्थर सा उर दहलाकर।
आगे बढ़ता जाता था
अवनी पर विटप सुलाकर॥

इसलिये न तिर सकती थी
तरणी भी तटिनी-तन पर।
बैठे थे नाविक चुप हो
सरिता के मलिन - पुलिन पर॥

उस पार वनाली ओढे
था नूतन - हरित - दुशाला।
थी गिरि-मस्तक पर शोभित
वृक्षों की सुन्दर - माला॥

जिसकी शीतल छाया में
सोए थे जलधर आकर।
कितनों को उड़ा रहा था
मारुत उत्पात मचाकर॥

रानी ने मुड़कर देखा
सैनिक चुपचाप खड़े थे।
जीवन के नश्वर - तन की
माया में विकल पड़े थे॥

वह पुनः विहँसकर बोली
क्या कर सकती है सरिता?
साथियों! तरणी बनकर है
तिरना शोणित की सरिता॥

इसलिये शीघ्र ही चीरो
बेतवा नदी की छाती।
हम सबको अभी बचाना
है माँ की शुचिता - थाती॥

यह कहकर रानी कूदी
तटिनी के जल आमण में।
फिर कूद पड़े सब सैनिक
रव गूँज उठा कण-कण मे॥

घोड़ों का तन डूबा था
केवल ऊपर मुख तन था।
जिनके सम्मुख दिखलाता
हर क्षण जल - आवर्तन था॥

पीठों पर सेनानी थे
नीचे अथाह पानी था।
सबसे आगे रानी का
घोड़ा वह तूफानी था॥

सबको बतलाता जाता
सरिता का मार्ग सुगम था।
लहरी के वक्षस्थल पर
पानी न कहीं भी कम था॥

रानी भी गरज - गरजकर
नव - साहस बढ़ा रही थी।
नागिन सी असि - धारा पर
नव पानी चढ़ा रही थी॥

सखियों! अब पार हुई हो
सम्मुख दिखलाता थल है।
अब पार हो गई हो तुम
थोड़ा ही गहरा जल है॥

डूबे सवार थे जल में
सिर ही केवल ऊपर था।
वह भी जल के सीकर की
बूँदों से पूरा तर था॥

सबसे पहले रानी का
घोड़ा पहुंचा हिननाकर।
चढ़ गया उछलकर तट पर
माता को शीश नवाकर॥

रानी ने कहा गरजकर
देखो है यही किनारा।
आओ अब दूर नहीं है
जीवन का सुखद - सहारा॥

क्षण में ही सैनिक - सखियाँ
हँस पार हो गईं सरिता।
सिर के ऊपर मुसकाता
जीवनदायक था सविता॥

स्वातंत्र्य पंथ के राही
भींगे पट सब फैलाकर।
तृण-दल की मृदु - शय्या पर
बैठे छाया में आकर॥

करके आराम सभी ने
फिर सैनिक वेष बनाया।
चढ़ गए उछलकर हय पर
माता को शीश नवाया॥

पलकों के गिरते - गिरते
वे लगे गगन में उड़ने।
निज टापों के वारों से
वे लगे पवन से लड़ने॥

बरवा सागर के गढ़ का
था केतु गगन में उड़ता।
जिसकी सुषमा पर मोहित
जलधर क्षण भर था रुकता॥

झुकता न कभी भी नभ में
यह केतु महा अभिमानी।
अम्बर में लहराता लख
अति क्षुब्ध हो गई रानी॥

म्यानों से निकल तत्क्षण
चमचम करती तलवारें।
गढ़ की छाती पर गरजीं
झाँसी की विकड़ - कटारें॥

थरथरा उठी वह अवनी
हिल गया दुर्ग मतवाला।
तलवारों के तापों से
किरणों में भभकीं ज्वाला॥

कर जोड़े पुर - जन बोले
वह सागरसिंह नहीं हैं।
भय से काँपते हृदय से
आती कुछ बात सही है॥

रानी बोली 'तब उसको
अब ठीक - ठीक बतलाओ।
यदि कुछ बल रखते हो तो
सम्मुख अब खड्ग उठाओ॥

गिर पड़े दुर्ग के प्राणी
रानी के पद पर क्षण में।
गूँजा आदेश गरजता
गढ़ के कम्पित कण-कण में॥

मिल गया भेद डाकू का
क्षण में ही उस रानी को।
कह उठी गरजकर 'देखो
पकड़ो उस अभिमानी को॥

इस समय लुटेरों के सँग
खिसनी वन में रहता है।
उस गहन-विपिन में छिपकर
सबका वैभव रहता है॥

तो छिपे-छिपे ही चलकर
घेरो उस तममय वन को।
चलदल सम कम्पित कर दो
उस अभिमानी, के मन को॥

देखो इस विकट दशा में
है सँभल-सँभलकर चलना।
पर ध्यान रहे इतना ही
जीते जी उसे पकड़ना॥

क्षण में घेरा फिर सब ने
उस अटवी को सेनानी।
कुछ लगे छानने वन को
अब छिपे-छिपे सिरदानी॥

इतने में पड़ा दिखाई
दीपक का विमल-उजाला।
जिसकी झुरमुट बन लटकी
थी हरित-लता की माला॥

छूटी गोली सैनिक की
क्षण काँप उठा वह कानन।
इतने में लगी बरसने
झाड़ी पर आग दनादन॥

डाकू भी टूट पड़े सब
ले - लेकर अपने भाले।
थोड़े थे टिक न सके वे
पड़ गए जान के लाले॥

सो गए अवनि पर क्षण में
तलवारों के वारों से।
तर - तर शोणित बहता था
करवालों की धारों से॥

अब सागरसिंह अकेला
रह गया युद्ध में लड़ता।
मन ही मन जय - आशा का
वह मंत्र सतत था पढ़ता॥

फिर प्राण बचाकर भागा
उस ओर जिधर थी रानी।
सखियों की तलवारों का
चमचम करता था पानी॥

रानी ने कहा गरजकर
सखियो! मत शस्त्र चलाओ।
जीते जी इसको पकड़ो
पीछे निज बाजि उड़ाओ॥

इतना कहकर रानी ने
घोड़े को एड़ लगाई।
कुछ ही दूरी पर डाकू
वह सागर पड़ा दिखाई॥

अब देर न थी रानी को
सागर को पा जाने में।
उसका हय निज घोड़े के
घेरे में था लाने को॥

तब तक रानी के ऊपर
उसने तलवार चलाई।
अपनी असि से रानी ने
अरि-असि दो-खण्ड बनाई॥

बल भर प्रयत्न करने पर
था नहीं छुड़ा वह पाया।
नभ के सिर पर रानी का
नव-विजय-केतु लहराया॥

झट सागर के हाथों में
पड़ गई शीघ्र हथकड़ियाँ।
उसके रक्तिम नयनों से
छूटी आँसू की लड़ियाँ॥

रानी बोली "अभिमानी!
यह समय नहीं रोने का।
निज बन्धु-जनों को दुख दे
यह समय न है खोने का॥

अब बोल बता निज इच्छा
क्या मन है अब करने का ?
लो शपथ इसी क्षण सम्मुख
निज देश - कष्ट हरने का ॥"

हो गया मुक्त सागर भी
माता को शीश नवाया।
लेकर कर में गंगा - जल
प्रण सबको शीघ्र सुनाया ॥

"माँ ! जब तक गर्म लहू है
जन - जन का भार हरूँगा।
नश्वर तन की आहुति से
माँ का सम्मान करूँगा ॥"

तब यही वीर सागर भी
हो गया देश - अभिमानी।
रानी का सैनिक बनकर
रक्खा स्वदेश का पानी ॥

बारहवीं हुंकार

निशि भर अवनी पर अम्बर
बरसा हिम-माल रहा था।
असहाय काँपता मारुत
दल-दल पर भटक रहा था॥

हिम-शिला-सदृश धरणी का
शीतल-श्यामल-अंचल था।
सिर नीचे किए व्यथा से
सुमनों का कोमल-दल था॥

नीरवता के शासन में
ठिठुरा-सोया जन-रव था।
भूतल पर टहल रहा था
हिम-सहचर तम-दानव था॥

कुछ कोल-भील के बच्चे
नंगे ही नाच रहे थे।
वे ठुनक-ठुनककर माँ से
खाने को माँग रहे थे॥

कुछ के कटि में चिथड़ों की
लिपटी केवल धोती थी।
जिनके मैले आनन को
माता जल से धोती थी।

कहती थी रात अभी है
सो जा मुन्ना ! आँचल में ।
आँखें थी दोनों डूबीं
वात्सल्य-जलधि के जल में ॥

माँ के तन पर भी मैला
सौ छिद्रों का कपड़ा था ।
वह तन बर्फीले तल पर
मानो निश्चिन्त पड़ा था ॥

झोपड़ियों में भूतल पर
छाती से पैर सटाए,
बैठे थे दीन - कृषक जन
खेतों पर ध्यान लगाए ॥

उनकी बाहों के भीतर
जलती थी पावक-ज्वाला ।
अब वह भी पहन चली थी
नव - शिशर - कणों की माला ॥

हिमकर का श्वेत - बदन भी
कुछ - कुछ धूमिल लगता था ।
ले अंगराग ओले का
मारुत तन पर मलता था ।

निशिपति भी लिए हुए थे
कन्धे पर श्वेत दुशाला ।
अधपके - हरे खेतों पर
पड़ता था हँसता पाला ॥

थी भाप निकलती ऊपर,
कम्पन था जल के तल में।
कुछ-कुछ गरमी थी अब भी
भूतल के गहरे जल में॥

बनचर अपने गह्वर में
शिशु को लेकर सोता था।
तारों की आँखों से नभ
व्याकुल होकर रोता था॥

ऊषा शिशु-रवि को लेकर
सोई थी स्वर्ण-महल में।
भौंरे सोए थे सुख से
फूलों के मुकुलित दल में॥

लहरें सोई थीं नीरव
पनघट के गर्म हृदय-में।
सौरभ सोया था सुख से
पुष्पों के मधुर-हृदय में॥

प्राची के सुखद-सदन में
सोया था शान्त सबेरा।
तरु-बाँसों की झुरमुट में
नीरव था विहग-बसेरा॥

लतिका लिपटी थी तरु से
बाँहों से बाँह मिलाकर।
सोई किसलय पर कलियाँ
दल-अंचल क्षणिक हिलाकर॥

ऐसी भयशीला निशि में
जब गिरि भी काँप रहे थे।
निर्झर - गह्वर सर्दी से
व्याकुल हो हाँप रहे थे॥

रानी सखियों को लेकर
चंचल - घोड़े पर चढ़कर,
तोपों को सजवाती थी
झाँसी के उन्नत - गढ़ पर॥

पढ़ती थी मंत्र सतत वह,
नारी-सेना जगती थी।
बन्दूकों के गर्जन से
अवनी थर - थर कँपती थी॥

फाटक - फाटक पर तोपें
विधिवत् रक्खी जाती थीं।
परकोटों के मस्तक पर
वे हँसती मुसकाती थी॥

कहती थीं वीरों! कुछ भी
चिन्ता न करो मरने की।
रह जाय न तिल भर धरणी
अरि को गढ़ में बढ़ने की॥

मिट जायँ शलभ सम गढ़ के
बाहर अरि के सेनानी।
फिर जाय वीर मतवालो!
रिपु की आशा पर पानी॥

निज तोपों की ज्वाला में
अरि की तोपें जल जायें।
झाँसी का अंचल वीरो!
अरि-मुण्डों से भर जायें॥

तलवारों के वारों से
सर में शोणित लहराये।
स्वातंत्र्य-ध्वजा अम्बर में
अरि-प्राणों से फहराये॥

फाटक-फाटक के रक्षक
वीरो! बरदान यही है।
इससे बढ़कर अब पावन
इस जग में स्थान नहीं है॥

यह महायज्ञ है जिसमें
अरि की आहुति देनी है।
यह स्वतंत्रता की तरणी
अरि-शोणित पर खेनी है॥

वीरों! जी-जान लगाकर
बारूद-पहाड़ बना दो।
विषघर गोले बरसाकर
रिपु-हाड़-हाड़ थर्रा दो॥

कोने-कोने से अरि की
नव ज्वाला भभक उठी है।
अब देर न है सिरदानी!
सिर-माला चमक उठी है॥

इसलिये शीघ्र ही गढ़ की
अब नाकेबन्दी कर लो।
कर में असि - पानी लेकर
माँ का अभिवादन कर लो॥

पूरी सामग्री रख लो
अब अधिक विलम्ब नहीं है।
रजवाड़ों की सेना का
कोई अवलम्ब नहीं है॥

हिन्दू - कुल - हंस शिवा ने
जनता की सेना लेकर,
मन्दिर का मान किया था
अरि - दल की आहुति देकर॥

छोटे - छोटे अश्वों पर
झोपड़ियों से बल लेकर।
माता का मान किया था
जन - जन की तरणी खेकर॥

उस समय यहाँ के नृप तो
अरि को ही माथ नवाकर,
बैठे थे माँ - बहनों से
रिपु का दरबार सजाकर॥

कुछ तो आपस में लड़कर
शोणित की नदी बहाकर,
हँस खेल रहे थे होली
भाई का भवन जलाकर॥

राणा प्रताप की गाथा
कण - कण में गूँज रही है।
जन - जन से प्रश्न सतत वह
हँस - हँसकर पूछ रही है॥

बोलो उस बनवासी का
किस नृप ने साथ दिया था?
तन से जन से या धन से
किसने सम्मान किया था?

उनकी सेना में केवल
थे कोल - भील मतवाले।
झोंपड़ियों में घासों की
रोटी पर पलनेवाले॥

निर्झर के शीतल - जल को
पी - पीकर बढ़नेवाले।
अम्बर के ही अम्बर से
लज्जा को ढकनेवाले॥

इसलिये हमें भी है अब
जनता को गले लगाना।
झोंपड़ियों के ही बल पर
है रण का बिगुल बजाना॥

हे भारत के नव गौरव!
मेरा सन्देश यही है।
तृण से लेकर भूधर को
मेरा आदेश यही है॥

यह धरणी है धीरों की,
वीरों की यह जननी है।
इसलिये आज तन-मन से
इसकी रक्षा करनी है॥

हम सब के नश्वर तन में
माता का प्यार छिपा है।
हम सब के गर्म-लहू में
माँ का सत्कार छिपा है।

इस प्रखर-शीत-पाले में
तलवारों की ज्वाला से।
शिव का अभिवादन कर लो
अरि-मुण्डों की माला से॥

सुन रानी का जयघोष प्रबल
अम्बर तमतमा उठा था।
प्राची का लोहित आनन भी
क्षण में दमदमा उठा था॥

तेरहवीं हुंकार

ऋतुपति के शर की मारों से
घायल होकर जाड़ा भागा।
मिल सकी न उसको कहीं शरण
इससे उसने भूतल त्यागा॥

उसके घायल उर का शोणित
गिरता जाता था भूतल पर।
इसलिये युगल ऋतु के रण से
हो गए रक्त से तरु तर-तर॥

इसलिये टहनियों से निकले
नव-कोमल-किसलय लाल-लाल।
या फहराती थी माधव की
जय-ध्वजा बनाली लाल-लाल॥

आमों की डाली-डाली पर
पिक ने पंचम स्वर में गाया।
तरु-तरु की हरित टहनियों पर
सौरभ-सुषमा में लहराया॥

मुसकाईं कलियाँ सुमनों के
रंजित-किसलय के अंचल में।
भर गया नया-उल्लास त्वरित
अवनी के हर्षित दल-दल में॥

गढ़ के छत पर बैठी रानी
थी सजा रही नव - वीर - वेष।
उसके आनन को श्रद्धा से
अब देख रहा था वीर - देश॥

यह साज नहीं था रानी का
यह था शृङ्गार भवानी का।
या रूप धरा पर चमक रहा
था सती पद्मिनी रानी का॥

सिर पर टोपी थी चमकदार
जिसका लहराता रंग लाल।
था चूम रहा जिसका पद झुक
अवनी का भीषण महाकाल॥

जिस लाली से नभ से भू तक
हो गई प्रभा भी लाल-लाल।
या स्वतंत्रता के मन्दिर का
झण्डा फहराया लाल-लाल॥

नव - मोती की लड़ियाँ जिसमें
चमचमा रही थीं चम, चम, चम।
था रुचिर - गले में हीरे का
नव-हार दमकता दम, दम, दम॥

थी कमरबन्ध में मश्क पूर्ण
पिस्तौलें भयद लटकती थीं।
क्षण जहाँ पहुँचकर रिपु-दल की
हुंकारें सकल अटकती थीं॥

नव कमरबन्ध में विष - मंडित
था पेशकब्ज भी दमक रहा।
था प्रलय-घटा में छिपा हुआ
मानो पवि चम-चम चमक रहा॥

भुजबन्ध भुजा पर राज रही,
था शौर्य - शक्ति से खेल रहा।
रानी का रोम-रोम प्रतिपल
हर - हर शंकर था बोल रहा॥

किंकिनी कड़ककर कहती थी
सारा संसार हिला दूँगी।
गोरों की तीखी तोपों को
झनकारों से दहला दूँगी॥

पश्चिम की ढाल ढहा दूँगी,
पूरब की चाल दिखा दूँगी।
रण-बीच शत्रु को गरज-गरज
लड़ने की कला सिखा दूँगी॥

सहसा आनन चमचमा उठा
युग - अधर शीघ्र ही फड़क उठे।
क्षण कालकूट से भी विषधर
रानी के रद थे कड़क उठे॥

"झाँसी मेरी है मैं न कभी
अरि को यह गढ़ लेने दूँगी।
है मातृ - भूमि की शपथ आज
अरि को न कभी सोने दूँगी॥"

इस अचल प्रतिज्ञा को नभ ने
क्षण गरज-गरजकर दुहराया।
वीरत्व - भाव झाँसी गढ़ के
तृण-तृण कण-कण में लहराया॥

सागर से चल अंग्रेज रोज
झाँसी के चहुँ - दिशि चमक उठा।
पौ फटी उषा के गृह में भी
क्रोधित रवि-आनन दमक उठा॥

कामासिन देवी के पीछे
दुश्मन का डेरा लहराया।
अरि की सेना को देख शीघ्र
गढ़ का झण्डा भी फहराया॥

छत पर ही रानी चौंक पड़ी
झुककर गढ़ के नीचे देखी।
जैसे नभ में घन के टुकड़े
वैसे भू पर डेरा देखी॥

मानस गद्‌गद हो उठा शीघ्र
आँखों से चिनगारी चमकी।
चंडी दिनमणि सम चमक उठी
रानी की युग - बाँहें फड़की॥

वह सोच रही थी बार-बार
मन था मयूर सम नाच रहा।
लोहित - आनन पर रौद्र रूप
साकार धरा पर राज रहा॥

है आज मिला अवसर मुझको
हँस प्राण-प्रसून चढ़ाने का।
नारी के दुर्बल हाथों की
हँस करामात दिखलाने का॥

वीरों को पुनः जगाने का,
पन्ना को शीश नवाने का।
जन-जन्म-भूमि का इस रण में
हँस-हँस ऋण पूर्ण चुकाने का॥

है समय मिला रण चण्डी को
जी भर कर रक्त पिलाने का।
बढ़-बढ़कर खप्परवाली को
अरि-सिर-माला पहनाने का॥

अरि को यह आज दिखाना है
मेरा वह देश पुराना है।
जिसने मुगलों को छका दिया
अब भी वह राजपुताना है॥

इसके कण-कण में गरज रही
वीरों की रण-हुंकार अभी।
हँस रहा व्योम में वीरों का
अपने स्वदेश का प्यार अभी॥

अब भी सुरसरि के मानस पर
चित्रित वह वीर-कहानी है।
अब भी फहराता कीर्ति-ध्वजा
चित्तौड-दुर्ग अभिमानी है॥

मोतीबाई झुककर बोली
"मैं ले लूँ वीरों की टोली।
यदि मिले आपकी आज्ञा तो
अरि-खेमें से खेलूँ होली॥"

रानी ने कहा "सुनो आली!
ऐसा रण है आसान नहीं।
इस तरह विना सोचे रण में
हो सकता है सम्मान नहीं॥

इतना न समझना अरि-दल के
खेमे की सरल कहानी है।
विकराल - काल - सम मुँह बाये
अरि-तोप छिपी तूफानी है॥

इसलिये दुर्ग की तोपों से
डेरों पर गोले बरसाओ।
इस तरह रोज की छाती पर
हँस-हँसकर गोले घड़काओ॥

नभ से अब पावक बरसाओ
भू पर चिनगारी लहराओ।
इस समर-यज्ञ में अरि-दल के
प्राणों की आहुति दिलवाओ।"

जब इधर हो रहा था विचार
रिपु - दल के गोले गरज उठे।
सैयर फाटक की छाती पर
विध्वंसक गोले गरज उठे॥

क्षण वीर-दुर्ग दमदमा उठा
मारों मे रंचक आह न की।
था प्रलय-सदृश वह गरज उठा,
गोलों की कुछ परवाह न की॥

उसने जीवन में देखा था
पुरु के वे अस्सी घाव अभी।
घावों से जर्जर नरवर की
रण करने की वह चाव अभी॥

वह सोच रहा 'जब मानव के
उर में ऐसा अभिमान भरा।
मानवता का सम्मान भरा'
भारत का गौरव-गान भरा॥

जब अस्थि-चर्ममय काया के
वीरों की अचल कहानी है।
जिनकी गाथा है सुना रहा
हँस कुरुक्षेत्र अभिमानी है॥

अब भी अम्बर में चमक रही
वीरों की त्याग-निशानी है।
अब अरावली के कण-कण से
सुन पड़ती धीर-कहानी है॥

मेरे उर में है व्याप्त तत्त्व
दुस्तर-पवि-सम पाषाणों के।
टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा मैं
अरि-दल के तीखे बाणों के॥

क्या वीर - हृदय भी दहल उठे
गोली-गोलों के वारों से ?
क्या वीर - केसरी काँप उठे
जम्बुक - अरि की हुंकारों से ?

मद - मस्त - द्विरद रुक जावे क्या
रिपु-कुत्तों के गुर्राने से ?
रण-शूर-हृदय क्या कँप जावे
कायरता के घमकाने से ?

मैं दिग्दिगन्त दहला दूँगा
नभ को भूतल पर ला दूँगा।
लेकर अञ्जलि में अरि - शोणित
माता को मैं नहला दूँगा ॥

गढ़ मन ही मन यह कहता था,
गोले पर गोले सहता था।
अपनी छाती उत्तान किये
झाँसी की जय - जय कहता ॥

गढ़ के बाहर अरि की सेना
छिप - छिपकर प्रतिपल बढ़ती थी।
'अब दुर्ग लिया, अब दुर्ग लिया'
यह मंत्र सतत वह पढ़ती थी ॥

चलती गोली की चादर के
नीचे रिपु की सेना बढ़ती।
जैसे अपने बिल से निकली
चींटी की हो सेना बढ़ती ॥

थे दुलहा जू औ खुदाबख्श
चुपचाप तोप को बढ़ा रहे।
रण-नीति - कला के पन्ने को
थे उलट-पलट कर पढ़ा रहे॥

अरि की सेना आगे बढ़कर
ललकार उठी, किलकार उठी॥
अपने घेरे के बीच देख
गढ़ की तोपें हुंकार उठी॥

फिर एक साथ ही गरज - गरज
वें लगी उगलने आग प्रबल।
जल - जलकर राख लगी होने
अरि की बढ़ती सेना पैदल॥

कितने भूतल की शैय्या पर
सो गये शान्त होकर निश्चल।
कितनों के तन से बहती थी
शोणित की परनाली कल - कल॥

सावन के घन की मारों से
जैसे पर्वत झरता झर - झर।
आहत - अरि के तन से वैसे
थी रक्त-धार बहती तर - तर॥

कितने थे पड़े कराह रहे,
कितने सोकर चिल्लाते थे।
कितने बन्दूकों में गोली
भरते भरते गिर जाते थे॥

कितने कहते थे भगो - भगो"
कितने कहते थे रुक जाओ।
कितने कहते थे मरने से
अच्छा है चलकर झुक जाओ॥

गोरी - पल्टन शोणित से तर
कहती यह कैसी रानी है?
हो गया आज से दुर्लभ अब
वह टेम्स नदी का पानी है॥

अब लौट न पावेंगे घर को
यह रानी बनी भवानी है।
इसके आगे हम लोगों की
अबला - सम बनी जवानी है॥

थे नहीं जानते भारतीय
नारी में अभी रवानी है।
अब भी यमुना की धारा से
सुन पड़ती वीर - कहानी है॥

तो कभी नहीं हम पद रखते
यह वीर-देश अभिमानी है।
नारी में जब यह शक्ति भरी
तो नर की कौन कहानी है॥

लेकिन अब क्या कर सकते हैं
घर सप्त - सिन्धु के पार बसा।
है इधर हमारे हृदयों में
रानी का जय - जयकार धँसा॥

जब तब अरि - सैनिक सोच रहे
थे रणस्थली में मौन खड़े।
तब तक गढ़ से उनके ऊपर
शत - गोले क्षण में बरस पड़े॥

गोरी पल्टन सो गई शीघ्र
शोणित से रंजित दलदल पर।
है पके खेत को काट कृषक
जैसे रख देता भूतल पर॥

जग उठी प्रतीची' हुई मगन
यह विजय देखकर विहँस उठी।
तरु - तरु की शिखा - शिखा पर थी
खग की पंचायत चहक उठी॥

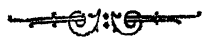

चौदहवीं हुंकार

रात का पहला पहर था
अवनि सोती थी सुनिश्चल।
थक गया था वायु चलकर
सो रहे थे मौन शतदल॥

मार्ग निश्चल सो रहे थे,
राज पथ भी सो रहे थे।
मातृ-भू की गोद में सब
भाव जग के सो रहे थे॥

बन्द सरसिज के भवन में
भृग सुख से सो रहा था।
व्योम खोकर हंस-मणि को
मौन होकर रो रहा था॥

भींगता सा जा रहा था
हरित माँ का शान्त-अंचल।
कालिमा में था दिखाता
दीप जुगुनू का नया-दल॥

सो रही थीं शान्त लहरें
नीर की शैय्या बिछाकर।
सो रहे खग घोंसलों में
सान्ध्य-गीतावलि सुनाकर॥

सुन अगर पड़ता कहीं तो
झींगुरों का राग प्यारा।
पूर्व की काली दिशा को
था जगाता शुक्र तारा॥

कौन कह सकता भला था
कालिमा में क्या छिपा है?
आज के दृग मूँदने में
नियति ने क्या ढब रचा है?

भूमि पर जिसके लिये
राजा बने थे दीन-त्यागी।
राजपद के त्याग की थी
विमल-उर में बुद्धि जागी॥

माँ-बहन ने रूप की
होली जला जिसको बचाया।
तुच्छ-नश्वर-देह का
यौवन सरस जिस पर चढ़ाया॥

मान का सौदा किया था
माँग का सिन्दूर धोकर।
सरस-सावन में सलोने
रूप का संसार खोकर॥

जनक-जननी ने विहँसकर
प्राण-प्रिय निज लाल त्यागा।
वृद्ध भामाशाह ने निज
कोष का मणि-लाल त्यागा॥

जिस लिये क्षत्राणियाँ थीं
प्राण - वल्लभ को सजातीं,
हाथ में तलवार देकर
युद्ध में निर्भय पठाती ॥

हो गये प्रासाद कितने
आन पर जल राख क्षण में।
मान हित कितने विभव भी
सो गये चिर धूल - कण में ॥

अभ्रभेदी दिव्य नगरी
हो गई जनहीन क्षण में।
गूँजता, जिनका अमर-
इतिहास अब भी है गगन में ॥

पुण्य - भारत देश के नव-
मान को क्षण में मिटाने।
चल पड़े दो - नीच गढ़ से
भेद रिपु - दल को बताने ॥

कालिका सी धर्मनिष्ठा
कर्म की उज्ज्वल - निशानी,
चण्डिका सी वीर - पूज्या
शौर्य - जननी - राजरानी

थी सुनाती वीर - जन को
देश की पावन - कहानी।
थी बताती मार्ग जिससे
रह सके शुचि गंग - पानी ॥

फूँकती थी मंत्र रानी
जग उठी थी रूप-माला।
फूल में भी जग उठी थी
क्रोध की दुर्द्धर्ष - ज्वाला॥

कल अभी तक जिस बदन पर
थी विहँसती पुष्प-माला।
राग में ही छिप रही थी
स्वर्ग की भी देव-बाला॥

कर - चरण में राजती थी
मेंहदी की दिव्य - लाली।
हाथ में थी चमचमाती
पुष्पमय - कलधौत - थाली॥

जा रही थी देव-गृह में
फूल की माला चढ़ाने।
देव - मंगल के लिये
केशव - कुलेश्वर को मनाने॥

गा रही थी गीत जिसमें
स्वत्वमय - अभिमान हँसता।
रागिनी के साथ था निज
देश का सम्मान हँसता॥

आज निशि में फूल सी
कोमल नगर की दिव्य - बाला।
त्यागकर तन के कुसुम को
थीं पहनती अर्चि - माला॥

हाथ में थी चमचमाती
चंचला सम खड्ग - माला।
गात में थी दमदमाती
क्रोध की दुर्द्धर्ष - ज्वाला ॥

फूल सा कोमल - बदन भी
हो रहा था वज्र सा अब।
राजता था वर्म तन पर,
था विहँसता चर्म भी अब ॥

काँपता था काल अब
अति दूर उनसे शान्त होकर।
पृष्ठ पर तूणीर शरमय,
व्योम में था केतु चंचल ॥

थे बढ़े जाते दनादन
यामिनि में वे कृतघ्न।
देखती जिनको सतत थी
दुर्ग की भीषण शतघ्नी ॥

चाहती थी यदि मिले
आज्ञा अभी इनको सुला दूँ।
जाति के इन घातकों को
राख की ढेरी बना दूँ ॥

जा रहे थे वे बढ़े
दो गाँव की जागीर लेने।
भेद देकर दुर्ग का निज
देश का सम्मान धोने ॥

पान के लघु मान पर ही
मान वीरों का मिटाने।
दुर्ग की रण-मंत्रणा सब
रात्रि में रिपु को बताने॥

शीशदानी के हृदय पर
वज्र का गोला गिराकर,
चाहते थे राज्य करना
शीघ्र रानी को मिटाकर॥

हाय! अपने जाति का अब
मान मिटने जा रहा है।
हाय! अपने वंश का सब
ज्ञान मिटने जा रहा है॥

आज मन्दिर के सुयश का
गान मिटने जा रहा है।
आज गीत का विमलतम
ज्ञान मिटने जा रहा है॥

आज फिर राठौर की है
मिट रही उज्ज्वल - निशानी।
आज धुलने जा रही
चित्तौर की पावन - कहानी॥

जा रही है आज मिटने
भूमि से नारीत्व - माला।
जा रही है आज जलने
मातृ-उर पर पुत्र-ज्वाला॥

आज होने जा रही है
अशुचि सुरसरि - नीर - धारा।
आज खींचा जायगा निज
धर्म का पावन - सहारा॥

आज हिन्दू ही मिटाता
इस धरा से हिन्दुआनी।
आ मुसलिम ही मिटाता
इस अवनि से मुसलमानी॥

इस तरह निज पूर्वजों की
वाणियाँ धिक्कारती थी।
दिव्य - ज्वाला में जली वे
नारियाँ फुफकारती थी॥

शीघ्र ही निश में कृतघ्नी
अरि-शिविर के पास पहुँचे।
सन्तरी भी हाथ में ले
असि गरजकर पास पहुँचे॥

पीरअली बोला विनय से
काँपता था गात थर - थर।
कायरों के शीश से भी
चू रहा था स्वेद तर - तर॥

जा सुनाया शिविर में यह
पीरअली आया मिलन को।
दुर्ग का सब भेद देने
आ गया है अरि - दमन को॥

बात सुनकर शिविर - रक्षक
हो गया गद्‌गद उसी क्षण।
पा गया अपना अभीप्सित
खिल उठा सरसिज-सदृश मन॥

वीर रक्षक ने त्वरित ही
वृत्त नायक को सुनाया।
हो उठा गदगद मुदित मन
शीघ्र लाने को पठाया॥

आ गए दोनों कृतघ्नी
रोज ने उठकर बिठाया।
मान का हँस पान देकर
दिव्य - भोजन भी कराया॥

बात आगे की चली फिर
रोज ने पूछा विनय से।
कर रही रानी भला क्या
दुर्ग में रचना हृदय से?

प्रश्न यह नभ ने भयातुर
रात्रि को रोकर सुनाया।
पीरअली ने दुर्ग का सब-
भेद क्षण में कह सुनाया॥

"कौन हैं जो आप के ये
साथ आए हैं यहाँ पर?
काम इनको है मिला क्या
दुर्ग में रण में वहाँ पर?

"नाम इनका दूलहा जू
दुर्ग-फाटक हाथ में है।
पाँच - तोपें काल सी
विकराल इनके साथ में है॥

"बोलिए खिड़की खुलेगी,
बोलिए फाटक खुलेगा?
दुर्ग में घुस जाय सेना
जो कहें वह पथ मिलेगा?"

"हैं प्रभो! ये मित्र मेरे
शीघ्र फाटक खोल देंगे।
आपके व्याकुल हृदय में
विहँस अमृत घोल देंगे॥"

रोज ने क्षण में वहाँ पर
शुद्ध - गङ्गा - जल मँगाया।
दूलहाजू - पीरअली से
शपथ का लेखा सुनाया॥

"किन्तु है सौगन्ध खाना
हाथ में ले गङ्ग-पानी।
मैं इसी को मानता हूँ
बात की पावन - निशानी॥

काँपने थर - थर लगे कर
दूलहाजू के उसी क्षण।
काँपने थर - थर लगा अब
चण्डिका का क्रोध से तन॥

बुद्धि पर परदा पड़ा था
गाँव की जागीर सुनकर।
भाग्य भी खुल जायगा अब
स्वार्थ की यह बात सुनकर॥

देश - द्रोही ने त्वरित वह
ले लिया शुभ गङ्ग - पानी।
रो उठी निज मातृ - उर में
मूँदकर दृग हिन्दुआनी॥

गरजकर धिक्कारती क्षण
पूर्वजों की थी कहानी।
नीच के दुष्कर्म पर थी
काँपती रानी भवानी॥

पान के लघु मान पर रे
नीच ! तूने मान खोया।
गाँव की जागीर पर
निज देश का सम्मान धोया॥

लौट आए रात में ही
दिव्य - नगरी सो रही थी।
व्योम की उडुगण प्रभा में
मंत्रणा भी हो रही थी॥

पन्द्रहवीं हुंकार

जय भूतनाथ, जय रुद्र - मूर्ति,
जय कालमूर्ति, जय-जय कराल।
जय-जय त्रिमूर्ति, जय शक्ति-रूप,
जय सैन्य-पाल, जय-जय विशाल॥

जय-जय कुमार, जय - जय उदार,
जय बाहुलेय, जय मुण्डहार।
जय एकदन्त, जय विघ्नराज,
जय कार्तिकेय, जय दण्डधार॥

जय अट्टहास, जय कालंजर,
जय नीलकण्ठ, जय कामदेव।
जय अब्जयोनि, जय नाभि - जन्म
जय कमलयोनि, जय आदिदेव॥

थी रात पहर भर बीत चली
छा गया अवनि पर अन्धकार।
रो उठी प्रकृति निज वेष देख
था कहीं न जग का आर - पार॥

तम की जाया नीरवता को
क्षण कँपा रहा था जय - निनाद।
शोकाकुल दसो दिशाओं को
था जगा रहा गढ़ - शंख - नाद॥

माँ विश्वकारिणी ! एक बार
जग जा, कण - कण दमदमा उठे ।
गोरे - मुण्डों की माला से
तेरी ग्रीवा चमचमा उठे ॥

इसमें है जग का मान भरा,
है गीता का शुचि - ज्ञान भरा ।
माता ! तेरे क्रोधानल में
है वीरों का सम्मान भरा ॥

लहराता इससे सप्त - सिन्धु
चमचमा रहा है आसमान ।
इससे ही हिमनग का विशाल
पावन - किरीट है भासमान ॥

माता ! तेरी ही ज्ञान - ज्योति
भासित करती जग - भाल - भाल ।
तेरी लाली में लहराता
है रवि का आनन लाल - लाल ॥

इस भाँति दुर्ग में होता था
आवाहन रण - मतवाली का ।
पावन - सुहास भी फैल गया
ऊषा के गृह की लाली का ॥

उस ओर शिविर से निकल पड़ी
अरि की सेना हथियार लिए ।
असि-कुन्त - तीक्ष्ण - हथियार लिए
तोपों की अगम - कतार लिए ॥

ऊषा ने अँगड़ाई लेकर
नभ में हँस कुंकुम फेर दिया।
इस ओर तुमुल - कोलाहल से
गोरों ने गढ़ को घेर लिया॥

क्षण भीमकाय तोपें अरि की
लग गईं दुर्ग की छाती पर।
शत - शत गोले भी बरस पड़े
जननी - की शुचिता थाती पर॥

हर - हर शंकर का जय - निनाद
गढ़ के कण - कण में गूँज उठा।
मन्दिर के घण्टों के रव से
नभ का प्रांगण भी गूँज उठा॥

देश - द्रोही दूल्हा जू ने
इतने में फाटक जा खोला।
युग के पावन - सिंहासन पर
गिर पड़ा अचानक अरि - गोला॥

इस बीच ओरछा फाटक पर
सुन्दर पहुँची तलवार लिए।
झपटी दूल्हा जू के सम्मुख
गरजी स्वदेश - सत्कार लिए॥

उस नीच - जाति - द्रोही के इस
विश्वासघात पर लरज उठी।
बाहर अरि की ललकारों पर
वह सिंहनाद सी गरज उठी॥

ओ रे विद्रोही दूल्हा जू !
रिपु - दल से तू क्या पावेगा ?
तेरे उर का भी गरम - रक्त
अरि - कुन्तों पर लहरावेगा ॥

जिस रानी ने विश्वास किया
तू ने उसका सिर काट लिया ।
रे नीच कलंकी ! तू ने ही
माता का शोणित चाट लिया ॥

तू ने कलंक का टीका अब
माँ के मस्तक पर लगा दिया ।
अब से स्वतंत्रता देवी को
हम सबसे कोसों भगा दिया ॥

सुन्दर की वह प्यासी नागिन
अंगार - सदृश्य दमदमा उठी ।
उस नीच कृतघ्नी का शोणित
पीने को अब चमचमा उठी ॥

सुन्दर आगे कुछ कह न सकी
सिंहनी - सदृश वह छूट पड़ी ।
एकाकी दूल्हा जू पर वह
'रानी की जय' कह टूट पड़ी ॥

दूल्हा जू ने करके छड से
तलवार - वार को रोक दिया ।
दो - खण्ड हो गया चन्द्रहास,
सुन्दर को छड़ पर रोक दिया ॥

इस बीच आ गए अरि - सैनिक
सब टूट पड़े उस नारी पर।
सो गई शीघ्र सुन्दर लड़कर
वैरी की गरम दुधारी पर ॥

अरि की सेना कटती - मरती
बढ़ती गढ़ - भीतर चली गई।
अब हन्त! हमारी . स्वतंत्रता
अपने वंशज से छली गई ॥

पग - पग के हित उस दुर्ग मध्य
सिर का था अगम पहाड़ बना।
गढ़ के मस्तक पर तोपों के
धूँए का विशद - वितान तना ॥

तोपें करती थी घायँ - घायँ
चल रही गोलियाँ सन, सन, सन।
कटकर असि गिरती थी भू पर
रव होता था खन, खन, खन, खन ॥

झंझा - झकोर - गर्जन बम से
हो उठा दुर्ग डगमग - डगमग।
छुट गया धैर्य धीरज का भी
ब्रह्माण्ड हिल रहा था डग - डग ॥

हिल उठी धरा, हिल उठा गगन,
अवनी पर यह भूडोल न था।
हो गया धूल से धूमिल नभ
पर अन्तक का हिंडोल न था ॥

उड़ गई वेदिका, उठा अजिर,
मिट गया स्वर्णमय सिंहासन।
काँपा अनन्त, कँप उठी मही,
डगमगा उठा हर का आसन॥

गढ़ के फाटक भी चूर हुए
जल उठा नगर का ठाट-बाट।
रानी के सैनिक पाट रहे
थे भू को अरि-सिर काट-काट॥

गढ़ की छत से घन गरज तोप
क्षण लगी उगलने प्रबल आग।
जिसकी ज्वाला से जल-भुनकर
रिपु चले दुर्ग से शीघ्र भाग॥

इस बीच वहाँ पहुंचा स्टुअर्ट
लेकर नूतन सेना अपार।
आर की सेना फिर लौट पड़ी
जिसका न कहीं था आर-पार॥

क्षण टूट पड़े वे सब मिलकर
गढ़ का वैभव हर लेने को।
रानी के सैनिक जूझ पड़े
जननी का ऋण भर देने को॥

रण की गङ्गा में उतर पड़े
वे यश की तरणी खेने को।
रिपु-दल का उर-शोणित लेकर
जननी के शुचि-पग धोने को॥

बह चला रक्त का परनाला
वीरों ने रण - होली खेली।
'रानी की जय, रानी की जय'
यह गूँज उठी क्षण में बोली॥

रानी अरि - गर्दन काट - काट
उड़ रही पवन में फर, फर, फर।
लप - लप करती असि - जिह्वा से
शोणित बहता था तर, तर, तर॥

बर - वाजि पवन को चीर - चीर
चंचल - गति से लहराता था।
पलकों के गिरते - गिरते ही
अरि - मुण्डों पर चढ़ जाता था॥

कोई था ऐसा शत्रु नहीं
जिसके न सामने आता था।
कोई था ऐसा स्थान नहीं
जिसका न हृदय थर्राता था॥

'रानी आई' यह कहने को
जब तक अरि - जिह्वा हिलती थी।
तब तक रानी की असि चमचम
अरि-कण्ठों से जा मिलती थी॥

रानी के भीषण रण से भी
वह अरि - दल बढ़ता आता था।
गढ़ के मस्तक को जला - जला
टिड्डी - सम चढ़ता आता था॥

जल उठा अस्तबल, जला भवन,
जल उठा देश का स्वाभिमान।
जल उठा आर्य-जन का युग का
संचित गढ़ का गौरव - निशान॥

जल उठी दुकानें, जले धाम,
जल उठे मुहल्ले एक साथ।
उस महा-विकट-बर्बरता में
हो गया आज जौहर अनाथ॥

लपटें नभ को छूने बढ़तीं
कहतीं अम्बर तू भी जल जा।
जब कलित-कीर्ति-झाँसी-ललाम
जल रही, साथ तू भी जल जा॥

किसलिये टिका है निराधार
ओ नीलवर्ण! झुककर आ जा।
या प्रलय-सदृश ज्वाला बनकर
रिपु-दल की छाती पर छा जा॥

गढ़ की तोपें वीरासन में
थी घायँ-घायँकर गरज रहीं।
उर के जलते क्रोधानल के
अंगार अवनि पर बरस रहीं॥

था भीमनाद से गगन पूर्ण,
सब बधिर-दिशाएँ काँप उठीं।
धरती के रज-कण धधक उठे
अरि की बर्बरता काँप उठी॥

क्षण महामृत्यु गढ़ से उतरी
अरि का जीवन पी लेने को।
संगर में माता के पग पर
जीवन अर्पित कर देने को॥

विकराल - काल का तांडव था
हो रहा अवनि के अंचल पर॥
अरि का शोणित लहराता था
तृण - तृण के रंजित-दल-दल पर॥

नव - महाकान्ति का आवाहन
तोपों की गड़गड़ करती थी।
विप्लव की नाटकशाला का
निर्माण विहँसकर करती थी॥

चल रही गोलियाँ थीं सन - सन
गोले छुटते थे धायँ - धायँ।
था दानवता का अट्टहास,
मानवता करती साँयँ - साँयँ॥

दोनों दल के गोले फटते
छुटती चिनगारी चमक - चमक।
विकराल - काल की लाल - जीभ
लपलपा रही थी दमक - दमक॥

क्षण शतघा नभ - चुम्बन करने
वह धूम्र सहारे थी चढ़ती।
इस ओर शवों का ढेर बना
बर्बरता नभ छूने बढ़ती॥

पाषाण चूर्ण हो कण होते
गोलों की रण - फुफकारों से।
उड़ते रजमय संताप लिए
गढ़ के पाषाण दरारों से॥

अरि - दल के क्रोध - हुताशन की
निर्दयता भी ललकार चली।
बह चले त्रस्त - उनचास - पवन
चीत्कार मच गया गली - गली॥

पहले गढ़ का आसन चमका
क्षण में ही फिर चमचमा उठा।
नभ की छाती पर ज्वालामय
था धूम्रकेतु दमदमा उठा॥

हो गई पवन की मन्थर - गति
बह चला दुःख का भार लिए।
अपनी झाँसी की सुकथा का
उर में था व्यथा अपार लिए॥

कोलाहल पर कोलाहल सुन
चीत्कारें दीन-अनाथों की।
रानी का हृदय फटा जाता
वाणी सुन लुंज - निहाथों की॥

गढ़ के ऊपर वह चढ़कर थी
प्राचीर-दुर्दशा देख रही।
किस भाँति भ्रलय का राज्य हटे
वह मार्ग व्यथित थी देख रही॥

सहसा रानी ने देख लिया
जल रहा पुस्तकालय धू-धू।
उस संचित निधि को ही खाकर
है आग विहँसती नभ छू-छू॥

जल रही हाय! डगमग पग की
अन्धों की लकुटी गीता है।
नव-ज्ञान-ज्योतिमय-वेद-मंत्र
गिरिधर की कथा पुनीता है॥

जल रहे हमारे कपिल, व्यास,
जल रही भीष्म की शर-शय्या।
जल रहा शास्त्र का अमल पंथ,
जल रही वासुकी-फन-शय्या॥

जल रहा विश्व का ब्रह्मसूत्र,
जल रहा ज्ञान का पुण्य धाम।
जल रहे स्वर्ग के सुगम मार्ग
साकेत सन्त भगवान राम॥

यह जला अस्तबल, जला धाम
बन सकता है फिर राज-भवन।
भग्नावशेष गढ़ में फिर से
आ सकता है चेतन जीवन॥

भर सकती घर में अन्नराशि
बस सकती है पुर, हाट, गली।
हो सकते हैं जन-जन प्रमुदित
हँस सकती है नव-गली-गली॥

पर जले वेद - पावन - पुराण
जिनकी गरिमा है लाल - लाल।
ये शास्त्र, काव्य, इतिहास - ग्रन्थ
जो हस्तलिखित थे शुचि-विशाल ॥

प्रतिलिपियाँ करने को जिनकी
अन्यान्य देश के नौजवान,
आते थे, शीश झुकाते थे,
करते थे जिनका यशोगान ॥

इन वेद - शास्त्र के निर्माता
सदबुद्धि - युक्त आलोक - धाम,
अब कहाँ मिलेंगे वे ऋषिवर
सद्धर्म - कर्ममय - यति ललाम ?

अब कहाँ मिलें जमदग्नि आर्य
गौतम, वशिष्ठ, कश्यप महान् ?
देवर्षि, मृगज, शृङ्गी, अगस्त्य,
पाणिनी, कपिल, साधक ललाम ?

अब कौन करेगा यशोगान
आजादी के दीवानों का ?
अब कौन करेगा मौन - मौन
आख्यान समर मर्दानों का ?

अब कौन कहेगा चुपके से
सन्देश पद्मिनी रानी का ?
अब कहाँ मिलेगा मौन मंत्र
पन्ना की वीर-कहानी का ?

आहत मानस में जाग उठा
उद्गार महारुद्राणी का।
तन - रोम - रोम फिर फड़क उठा
उस समर - भवानी - रानी का॥

आली सुन्दर से वह बोली
वाणी से बिजली कड़क पड़ी।
आशा - सर पर अनुभाव - परी
संगीत सुनाती थिरक पड़ी॥

सुन्दर! सुन्दर! मेरी प्यारी
झाँसी की है दुर्गति ऐसी।
यह देह बनी जिसकी रज से
उस पर अरि की दुर्मति ऐसी॥

है काँप रहा गढ़ का कण-कण
बैरी के अत्याचारों से।
हैं विकल दिशाओं के दिग्गज
तक्षक - अरि की फुफकारों से॥

तो गरुड़ अभी बन जाना है
वैरी को यह दिखलाना है।
यह वही वीरवर - देश अभी
जिसका केसरिया बाना है॥

जिसके झण्डे का रंग लाल
रण करने में दीवाना है।
अब भी ललकार रहा रण में
यह विजयी - क्षत्रिय - बाना है॥

फिर से रानी के मानस में
भस्मित - ग्रन्थों की आग जगी।
उस वीर - हृदय को कँपा - कँपा,
क्षति की नव करुणापाग जगी॥

वह वीर हृदय जो पुत्र शोक,
पति-शोक से न भी काँपा था,
जिसने संगर में विहँस - विहँस
अरि - सिर से भू को नापा था॥

जिसको न कँपा - तक पाया था
रण - महाप्रलय - उनचास - पवन।
जो हृदय कमल - सम खिलता था
सुनकर गोली की सनन सनन॥

वह वीर - हृदय भी काँप उठा
चलदल के कोमल पत्ते सम।
रो उठी बिलखकर महरानी
नादान - दुधमुहें - बच्चे सम॥

रो उठीं नवों - निधियाँ मानो
थी तीर्थराज - विमला रोईं।
आनन्दपुरी, जगदीशपुरी,
कमलासन पर कमला रोईं॥

अणिमा रोईं, गरिमा रोईं,
थी विन्ध्यवासिनी भी रोईं।
करुणा रोईं, वरुणा रोईं
थी विघ्नवारिणी भी रोईं॥

बह रही सतत अविरल गति से
आँसू की धारा थी झर - झर।
तन पर का रंजित चीनांशुक
हो गया पसीने से तर - तर॥

इस बीच वहाँ सिरदानी ने
आकर नूतन सन्देश दिया।
हो गया शान्ति का अन्त मनो
उसने रण का उपदेश दिया॥

जननी! रणधीर गौसखाँ ने
कितनों को लड़ना सिखा दिया।
घनगरज तोप की मारों से
कितनों को मरना सिखा दिया॥

लेकिन बेचारे क्या करते
एकाकी रिपु की मारों में।
अन्यायी की फुफकारों में
आर-दल के तीखे वारों में॥

लग गई हृदय में रिपु-गोली
सो गए भूमि के आँचल पर।
लिख दी मारुत ने वीर - कथा
तरु - तरु के कम्पित दल-दल पर॥

यह सुनकर रानी उछल पड़ी
सिंहिनी - सदृश वह तड़प उठी।
अरि-हृदय - रक्त की प्यासी - असि
लेकर बिजली सम कड़क उठी॥

युग - अधर अचानक फड़क उठे
क्रोधाग्नि जगी उस रानी की।
भाऊ को खाँ की तोपें दो
यह आज्ञा मिली भवानी की ॥

चल पड़े देशमुख चुपके से
सिर पर आशा का भार लिये।
मुख पर विजयी उल्लास लिये,
उर में स्वदेश का प्यार लिये ॥

था राजभवन का वक्षस्थल
अब भी संगर का दीवाना।
जुट गये वीर - सरदार पहन
तन पर फिर केसरिया - बाना ॥

रानी को आशीर्वाद मिला
था रणचण्डी महरानी का।
क्षण मौन - मौन आवाहन था
शिवदूती, सती, भवानी का ॥

वह समर बीच जा विहँस उठी
उर में थी व्यथा अपार भरी।
कम्पित अधरों से निकल पड़ी
कोमल - वाणी सन्ताप - भरी ॥

"वीरों! जो आप सभी ने अब
है अरि को लड़ना सिखा दिया।
हँस समर - सिन्धु पर सेतु बना
दुस्तर पर चढ़ना सिखा दिया ॥

प्यारी झाँसी की रक्षा की
वीरों ने सिर की माला से।
धनिकों ने द्रव्य निधानों से,
दिनों ने उर की ज्वाला से॥

जननी ने वीर सपूतों से,
सतियों ने अचल सुहागों से।
ललनाओं ने गढ़-रक्षा की
निज राग-रंग के त्यागों से॥

फिर भी जय-लक्ष्मी दूर अभी
अब होगा बेड़ा पार नहीं।
है विधि हम सबके अभी वाम
झाँसी का है उद्धार नहीं॥

इसलिये गुप्त पथ से गढ़ के
सबको अब बचकर जाना है।
सन्ध्या के धूमिल अंचल में
छिपकर अब प्राण बचाना है।

मेरे इस तन को जीते जी
अरि स्पर्श नहीं कर सकता है।
मम पद की धूल-निशानी पर
पद भी न कभी रख सकता है॥

अब एक मार्ग ही है मुझको
इस तन-तरणी के खेने का।
जननी का ऋण भर देने का
पितरों का तर्पण करने का॥

है भरा हुआ बारूदों से
इस वीर - किले का वक्षस्थल।
जिससे रिपु - दल की छाती में
धड़कन होती रहती प्रतिपल॥

अब जाकर उसमें आग लगा
मैं स्वयं भस्म हो जाऊँगी।
युग के बिछुड़े निज पितरों के
पद, पंकज में मिल जाऊँगी॥

सुनकर यह धर्म - पुरोहित ने
उपदेश सुनाया रानी को।
नैराश्य - नींद से जगा दिया
झाँसी-गढ़ की रुद्राणी को॥

जिसने स्वराज्य की बेदी पर
संकल्प किया मिट जाने का।
इस महायज्ञ में हँसते ही
साकल्य - सुरभि बन जाने का॥

वह समर - भवानी सुना रही
है कायरता की बात यहाँ।
इससे बढ़कर यदुनन्दन को
पहुंचेगा अब आघात कहाँ?

गीता-मुकुन्द का अब ऐसा
हो सकता है अपमान यहाँ।
इस मातृ - भूमि के गौरव का
होगा फिर से सम्मान कहाँ?

सिर नीचे किये महारानी
सुन रही बात थी ब्राह्मण की।
तन रोम-रोम था फड़क रहा
सह रही बात थी ब्राह्मण की॥

अब भी अनीकिनी है अपार
पा सकती है माँ मुक्ति अभी।
इस कठिन निराशा के तम में
है विहँस रही नव-युक्ति अभी॥

है अभी पेशवा की सेना
कालपी नगर में नव-विशाल।
जिससे रणचण्डी का फिर से
हो सकती है सज्जा कराल॥

यदि विजित हो गई है दिल्ली,
है कानपूर का हुआ पतन।
तब भी जनता की आशा का
कर सकता है अरि नहीं हनन॥

है विन्ध्य-अवध स्वातंत्र्यपूर्ण
है महाराष्ट्र दमदमा रहा।
जिनका अतुलित-पुरुषार्थ आज
नभ पर है अब चमचमा रहा॥

इसलिये महारानी गढ़ से
चीरती शत्रु-सेना निकले।
जिनका अनुपम-पुरुषार्थ देख
कालपी-हृदय रण को मचले॥

वह धर्म-पिता का महामंत्र
बल फूक चला था कण - कण में।
जग उठी धरा, जग उठा गगन
जग गया शौर्य जन-मन-मन में ॥

रानी की आँखों के सम्मुख
था कुरुक्षेत्र चमचमा रहा।
स्यन्दन पर बैठा रुद्र रूप
अर्जुन का था दमदमा रहा॥

थे बने सारथी स्वयं कृष्ण
रथ अनिल-बीच लहराता था।
नव - रुचिर - कपिध्वज अम्बर में
फर, फर, फर, फर फहराता था॥

रानी की भी बाहें फड़की
कर में असि चमचम चमक उठी।
सन्ध्या की कबरी में गूँथी
मुक्ता-मालायें दमक उठी॥

सोलहवीं हुंकार

हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी।

समय ही प्रबल है किसी ने न जाना
वही है हँसाता, वही है रुलाता।
महामेरु को नीर-तल पर सुलाकर
जलधि के हृदय पर अचल है बनाता॥

उसी की कथा कह रही सिन्धु-लहरें
उसी की कृपा पर धरा डोलती है।
वही है हृदय में बसा प्राण बनकर
उसी की दया पर गिरा बोलती है॥

सितारों की आँखों से नभ रो रहा था
दिशा कह रही थी निशा से कहानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही है भवानी॥

अगम पथ विहँसकर चरण चूमता था,
सुगम मार्ग बढ़कर पवन था बताता।
तमोमणि तमिस्रा का उर बेधकर था
नदी, बन, पहाड़ों में दीपक दिखाता॥

जहाँ राजरानी वही गति विजय की
कहानी सुनाती बढ़ी जा रही थी।
पहाड़ों की छाती कँपाती थराथर
अभय हो शिखर पर चढ़ी जा रही थी ॥

किला जल रहा था, प्रभा रो रही थी,
मिटी जा रही थी विजय की निशानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी ॥

कुशासन था तम का, हुताशन का आसन
धरा पर, पवन पर जमा जा रहा था।
लिये धूम्र-सेना निगलने गगन को
अनल ज्वाल हँसता बढ़ा जा रहा था ॥

भला कौन रोकेगा रणचण्डिका को
जो चाहे तो वह शीघ्र जग को हिला दे।
धरा को गगन से गगन को धरा से
पलक मारते ही रगड़ कर मिला दे ॥

किले को मनाती, तिमिर को कँपाती
चली जा रही थी निडर राजरानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी ॥

गिरे को उठाती, तने को झुकाती,
अहं को चबाती चली जा रही थी।
थी कर में दुधारी, थी उर में भवानी
जवानी नचाती बढ़ी जा रही थी ॥

धरे हाथ शायक से अरि-सिर उड़ाती
कबन्धों की सीढ़ी चढ़ी जा रही थी।
निराशा के बादल से आशा निकलकर
यही गीत गाती चली आ रही थी॥

निडर हो समर में लड़ो वीर! तब तक
धरा पर है जब तक त्रिपथगा का पानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी॥

विटप के लिए बन - हुताशन बनी थी,
बनी वांडवनल थी सजल वाहिनी में।
सघन-घन-घटा में प्रखर - वायु थी वह
बनी थी प्रभा - पुञ्ज तम-वाहिनी में॥

पहाड़ों की चोटी की बोटी बनाकर
धरा पर सुलाने में भेदी बनी थी।
चली जा रही थी कुशो-कंटकों में
पहाड़ी - कछारों की झाड़ी घनी थी॥

पता था किसी को कि काँटों पे हँसकर
भला अब चलेगी ये झाँसी की रानी?
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी॥

गगन चाहता था धरा पर उतरकर
सजल नेत्र से चूम ले युग्म - पद को।
सघन-घन-घटा में तड़ित चाहती थी
गले से मिला ले भवानी के रद को॥

रुचिर चन्द्रिका चाहती थी कि ले ले
मधुर-हास रानी के सालोक-मुख से।
बताती चली जा रही थी जगत को
कि माता की बेड़ी कटेगी न सुख से॥

सिखाती चली जा रही थी तिमिर में
कि कैसे बितानी है स्वर्णिम - जवानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी॥

जो अड़ते थे घोड़े कहीं साथियों के
सवारों की ठुड्ढी अगर काँपती थी।
तो रानी विहँसकर थी घोड़ा बढ़ाती
पलक मारते विघ्न को नापती थी॥

बताती थी पथ वह तिमिर की घटा में,
छटा थी दिलाती वह असि के जहर की।
सुनाती थी जयघोष में वह कहानी
कुमारी के खप्पर के शोणित-लहर की॥

लगा दो हिमालय के ऊँचे-शिखर पर
अमर शौर्य की चमचमाती निशानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी॥

बँधा पीठ पर था तनय पीत - पट से
जिसे पूज्य राजा ने दत्तक लिया था।
चमकता चमाचम मुकुट शीश पर था
जिसे पूर्वजों ने सुशोभित किया था॥

बढ़ी जा रही थी दनादन विपिन में
चढ़ी जा रही थी तिमिर को कँपाती।
था थर-थर विकम्पित महाकाल भय से
विजय की पताका थी नभ में उड़ाती॥

बची वृद्ध - भारत की लकुटी वही थी
उसे देखती थी चकित हिन्दुआनी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी॥
किले से चली जा रही थी भवानी॥

लिये वाहिनी आ के वोकर ने तत्क्षण
विपिन में ही रानी को ललकार घेरा।
उधर रात्रि की चित्रकारी पर नभ में
उषा ने भी हँसकर के झाड़ू था फेरा॥

लड़े वीर वीरों से ले लेकर भाले
चली गोलियाँ सन - सनाती हवा में।
किसी को पता न था जीवन-मरण का
विषैला गरल उड़ रहा था हवा में॥

गगन चाहता था धरा से बताना कि
रानी नहीं है, है रण में भवानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी॥

लिये हाथ में लपलपाती भुजंगीन
भवानी सी रानी समर कर रही थी।
जो रीता था खप्पर महाकालिका का
उसे शत्रु के रक्त से भर रही थी॥

दिखाई पड़ा सामने दुष्ट बोकर
जो छिपकर चलाता सनासन था गोली।
पलक मारते उसके उर के रुधिर से
भभकती दुधारी थी रानी ने धोली॥

भगी शत्रु सेना यही शब्द कहती
कि रानी नहीं है, है यम की निशानी,
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी॥

यों जीवन की बाजी लगाकर भवानी
प्रबल वाहिनी पर विजय पा गई थी।
मगन था गगन, जग उठी भूमि प्यारी
धरा से गगन तक प्रभा छा गई थी॥

बिना अन्न-जल के निशा भर में वह पथ
था रानी ने सौ मील का तय किया था।
विहगवृन्द गाते विजय-गान सुन्दर
मलयवायु ने स्वेद-कण हर लिया था॥

प्रखर-वात में भी सतत जल रही थी
अमर-शौर्य की चमचमाती निशानी।
हृदय से छली जा रही थी रवानी
किले से चली जा रही थी भवानी॥

सत्रहवीं हुंकार

तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

उधर व्योम में मंत्रणा हो रही थी
इधर राजता हर्ष का था तराना।
यही है समय का सुनहला - सवेरा
कि पल में हँसाना व पल में रुलाना ॥

नहीं जी सकोगे जगत में हैं खाईं
जिसे तुम समझते हो वैभव का पलना।
नहीं जानते हो समय की मणी में
छिपा काल है काटता रूप-छलना ॥

यही सोचती थी प्रवासिन वह कोरिन
लगा दूँ गगन-भाल में मैं निशानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

निकलकर भवन से खड़ी सोचती थी
बचा लूँ भवानी का अनमोल - जीवन।
पिला दूँ पड़े रुग्ण - शैय्या पे चिन्तित
दुखी-क्लान्त-भारत को अब संजीवन ॥

बजे दुन्दुभी आर्य-जननी के घर में,
जले दीप विहँसे चमाचम दिवाली।
तिमिर के हृदय पर गिरे वज्र क्षण में
प्रभा-शान्ति राजे धरा पर निराली॥

मिले अंशुमाली को गङ्गा का शीतल
महापुरायदायक - सुगति-धाम - पानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी॥

गगन रो रहा है, धरा रो रही है
मलय वायु कहाता व्यथा-भार चलकर।
हृदय काँपता है अचल का थराथर
तिमिर राजता है कुसुम को मसलकर॥

नहीं खुल रहा है लताओं का अंचल,
नहीं डोलते हैं भ्रमर फूल-दल पर।
किसे मैं सुनाऊँ समय की कहानी
करुण-गीत गाती निशा भूमि-तल पर?

बहा जा रहा मातृ-भू के दृगों से
व्यथा-भर से क्लान्त अविराम पानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी॥

उठा ली करों में चमाचम भुजंगिन
चमकने लगा पार्श्व में वर्म प्यारा।
बनायी वही वेष रानी का जो था
समर में बना वज्र का सा निराला॥

उछलकर चढ़ी वाजि पर जय मनाती
झुकाती गगन को धरा पर विहँसकर।
कँपाती शिखर को, खिलाती गरल को
अपर दल की छाती कँपाती डपटकर ॥

झुके शत्रु कोरिन पे रानी समझकर
पवन के हृदय में जगी रण खानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

इधर था विजय, क्षण उधर था विजय, क्षण
धमकते थे गोले प्रबल-वाहिनी में।
उधर व्योम में कड़कड़ाती थी बिजली
बड़ी व्यग्रता थी जलद-वाहिनी में ॥

धरा का वसन खून से रँग गया था
सुखाती जिसे थी प्रखर खड्ग ज्वाला।
भरा जा रहा था कपाली का खप्पर,
पिरो थी रही शत्रु की मुण्ड-माला ॥

निशा में थिरक नाचती थी पिशाचिन
गगन से चली आ रही थी भवानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

धरा पर कभी क्या हुआ है ये सम्भव
अकेला चना भाड़ को फोड़ता है?
नहीं यह कभी भी सुना ही गया है
अकेला ही लोहा शिला तोड़ता है ॥

भला कब तलक एक झरकारी लड़ती
प्रबल - शत्रु की बाढ़ सी वाहिनी से।
पकड़ ली गई जीते जी वह समर में
गरजती हुई शत्रु की वाहिनी से॥

मनाई गई अरि-शिविर में दिवाली
पकड़ली गई आज झाँसी की रानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी॥

थे सैनिक सभी बात करते यही थे,
धरा पर वे फूले नहीं थे समाते।
कभी थे हवा में वे टोपी उड़ाते,
कभी नाचकर थे विजय - गीत गाते॥

न रिपु-दल तनिक जान पाया अभी तक
कि रानी नहीं है, है कोरिन भवानी।
जो रानी का जीवन बचाने में हँसकर
चली थी चढ़ाने उमड़ती जवानी॥

छिपे आड से दूलहाजू ने बताया
कि कोरिन है, समझो न झाँसी की रानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी॥

लगी आग कोरिन के तन में यह सुनकर
लगी एक गोली सी दुल्हा की बोली।
फड़कने लगे ओठ जल सी उठी वह
भरी त्याग की सौम्य - अनमोल-झोली॥

कड़कने लगी नीच ! मर जा इसी क्षण
धरा के लिये भार सा तू बना है।
नहीं जानता आर्य - धरणी के ऊपर
सतत धर्म का मेघ छाया घना है ॥

तू अब से अरे चेत कुल के कलंकी !
मिलेगा तुझे बन्धु से गज्ञ-पानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही थी समर की कहानी ॥

बनी वह रही मास भर बन्दिनी थी
प्रबल शत्रु के काल-घर से शिविर में।
सुनाता उसे था पवन ही अकेला
अमर - शौर्य का गान सूने-तिमिर में ॥

पुनः मुक्त कर दी गई वह शिविर से
बढ़ा शत्रु-दल कालपी को कुचलने।
बढ़ा आ रहा हो धरा पर गरुड़ ज्यों
महासर्प को तीव्र गति में निगलने ॥

यही गीत गाती चली जा रही थी
अमर मेदिनी पर है झाँसी की रानी।
तिमिरमय शिला पर हृदय के रुधिर से
लिखी जा रही समर की कहानी॥

अठारहवीं हुंकार

माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी !

सो गये कितने विभव हैं
राजव्रत की साधना में ।
हो गये कितने निधन हैं
मोह की आराधना में ॥
लाल कितने लाल से जो
भाव की लाली छिपाकर,
सो गये लघु धूल-कण में
वंश के दीपक बुझाकर ॥

आज इतने प्राण-सुमनों की अतुल-शुचि-अर्चना पर
है नियति की गूँजती मायामयी यह री कहानी !
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी !

बह रहा था अश्रु प्रतिपल
सतत नगपति के दृगों से ।
झर रहा था खून झर-झर
वाजि के चचल रँगों से ॥
मार दी थी टाप जिसने
उच्च-भूधर के शिखर पर ।
आज वह दुर्जेय-घोड़ा
चूमता है रज अवनि पर ॥

जब हुआ विधि बाम मुझसे वाजि ! नाता तोड़ते हो
कौन अब हँसकर जगायेगा पवन में भी रवानी ?
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी !

एक ही हुङ्कार पर थी
चल पड़ी कितनी कटारें ।
एक ही ललकार पर थी
खिच पड़ी कितनी दुधारें ॥
व्योम का बरदान सुरसरि
सम धरा पर चल पड़ा था ।
वीर - रस साकार होकर
अरि-दमन हित चल पड़ा था ॥

हे प्रभो ! इस पुण्य-तीर्थ-पवित्र-व्रतमय यात्रियों की
साधना की क्या सुनायी शान्तिमय-शुचिता-कहानी ?
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी !

हे तुरंग ! न साथ छोड़ो
विपिन में आयी हुई हूँ ।
आज दुर्दिन के पगों से
त्रस्त - ठुकराई हुई हूँ ॥
साथ जो तुम छोड़ दोगे
प्राण मैं भी छोड़ दूँगी ।
वंश के गुरु-मंत्र से मैं
आज नाता तोड़ लूँगी ॥

वाजि का सिर गोद में था, रो रही थी विकल रानी,
साथ ही हय के दृगों से बह रहा था उष्ण - पानी।
माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी!

विजन - बन का शून्य - प्रान्तर
एक शब्द न बोलता था।
पवन दुख से था विकल कुछ
लडखड़ाता डोलता था॥
दो हृदय थे परम - व्याकुल
नाचती सम्मुख निराशा।
वाजि का जीवन सुखाती
थी सतत महती - पिपासा॥

क्या प्रगट करता भला वह रुग्ण-शैय्या पर पड़ा हय
चाहिये मुझको भवानी! अन्त में दो घूँट पानी!
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी!

रो रही थी बैठ रानी,
बाल साथी रो रहा था।
स्वामि-भक्ति - प्रतीक निश्चल
भूमि - रज पर सो रहा था॥
प्राण-रक्षक मौन हो
साकार जग से जा रहा था।
व्योम में धूमिल - निराशा-
अभ्र छाता जा रहा था॥

वाजि का मुँह चूमकर रानी विलख कर कह रही थी
हे सखे! मुझको दिखा दो कीर्ति की उज्ज्वल-निशानी।
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों को अभी मायामयी यह री जवानी!

चल बसा घोड़ा जगत से
रह गई रानी बिलखती।
चल बसी वह भक्ति जग से
रह गई रानी कलपती॥
विश्व का नाता यही है
देख लो नश्वर - चराचर।
काल ही है मुक्ति का नव-
द्वार मत काँपो थराथर॥

इसलिए धन से न तौलो कीर्ति का तुम भार मानव!
रह धरा पर अन्त में जाती यही उज्ज्वल-निशानी।
माँ बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी!

अब भला मैं क्या कहूँ
इतनी बहन विधवा बनाकर?
क्या करूँ इतने घरों के
वीर - पुत्रों को गँवाकर?
क्या कहूँगी पूर्वजों से
वंश के दीपक बुझाकर?
क्या करूँगी अर्चना मैं
पुष्प से डाली सजाकर?

इसलिए हे बाल साथी ! नींद से उठ बैठ जाओ
मैं तनिक धो लूँ तुम्हारे पाँव को ले गङ्ग-पानी।
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी !

आज मैं किससे कहूँ यह
टाप से भू को हिला दो ?
आज मैं किससे कहूँ फिर
व्योम को भू से मिला दो ?
इस वज्र सी तलवार का
पतवार मैं किसको बनाऊँ ?
आज किस गति-सूत्र में मैं
शत्रु-सिर माला बनाऊँ ?

हे सखे मम बाल रक्षक ! ये समस्यायें सुझाकर
आँख खोलो अब भला कैसे बचेगी हिन्दुआनी ?
माँ-बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी ?

अश्रुमय निर्झर कठिनतम
उपल के उर को रुलाकर,
कह रहा था करुण-स्वर में
सित-विमल-धारा हिलाकर ॥
"शान्त हो, जग में सदा ही
पथ दिखाता है समय ही।
शृङ्ग से भू पर गिराकर
फिर उठाता है समय ही ॥

इसलिये नव - कल्पना की डोर पर उद्योग का
पलना बनाकर झूल जाओ हे जगद्वन्द्या भवानी !"
माँ–बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी !

जग गई रानी पुनः तब
मोह का परदा हटाकर ॥
जग उठा नव - प्रात क्षण में
विघ्न का घूँघट उठाकर ॥
भूमि के शुचि - गर्भ में तब
वाजि को सुख से सुलाकर,
बाल - साथी पर करों से
सुमन की झोली चढ़ाकर,

हो गई रानी खडी, तन-रोम-रोम फड़क उठा फिर
चमचमा क्षण में उठी विद्युत सदृश थी असि पुरानी।
माँ–बहन की माँग का सिन्दूर धोकर हँस रही है
इन नरेशों की अभी मायामयी यह री जवानी !

उन्नीसवीं हुंकार

जग गई वसुन्धरा कँपी प्रगाढ़ कालिमा।
राजने लगी प्रभात की नवीन लालिमा॥
जग पड़े वहाँ कमल विचित्र राजने लगे।
मत्त-भृंग पुष्प-कोश शीघ्र त्यागने लगे॥
आरती उतारने निकल पड़ी कुमारियाँ।
फूल से सजी चमक उठी नवीन-थालियाँ॥
वल्लरी प्रभात में प्रमत्त झूमने लगी।
प्रात की सुहागिनी तरंग चूमने लगी॥
लोल स्वप्न ले चली अनन्त तारकावली।
त्यागने लगी बनस्थली निहारकावली॥
कूँजने लगा निगम-सुमंत्र आर्य-धाम में।
गूँजने लगा विहग-गान ग्राम-ग्राम में॥
भव्य-कालपी नगर कुवेर के विशाल सा।
चूम ले अनन्त को यहो विचित्र लालसा॥
ऋद्धियाँ मना रही युगान्त तक मिली रहें।
सिद्धियाँ बता रही प्रसून सी खिली रहे॥
आज भी पतंगजा कथा पुनीत कह रही।
काल के कराल गाल में विपत्ति सह रही॥
एक था समय की फूल सा मिला प्रकाश था।
प्रेम का निवास और कीर्ति का विकास था॥

शुद्ध - शान्ति - भाव में स्वतंत्रता बिराजती।
एक ही पुकार पर सहस्र शीश भ्राजती॥
कह रही अनन्त से निदेश मातृ - भूमि का।
एक हो रचो नवीन - प्रेमपूर्ण - भूमिका॥
इस समय विशाल - दुर्ग का हृदय विहँस पड़ा।
इस समय स्वजाति का पुनीत - स्वप्न हँस पडा॥
जग पड़ी स्वधर्म की दबी युगान्त बन्दना।
हृष्ट मातृ-भूमि की जगी स्वतंत्र कल्पना॥
शान्त - नील - वर्ण पर नवीन - रंग चढ़ चला।
धूल का पहाड व्योम चूम्बनार्थ बढ़ चला॥
काँपने लगी - मही न किन्तु भूमि डोल था।
घड़घड़ा उठे दिगन्त वज्र सा हिडोल था॥
चल पड़े तुरंग वायु चीर कर कतार से।
चल पड़े सवार भानु-रश्मि की उहार से॥
हिनहिना उठे तुरंग मेदिनी मचल पड़ी।
विन्ध्य प्रान्त छोड़ विन्ध्यवासिनी निकल पड़ी॥
राज मार्ग पर अपार भीड भी उमड चली।
एक साथ ही सहस्र - नारियाँ निकल पड़ी॥
देखने स्वजाति की बनी विशाल - वाहिनी।
देखने जवानियाँ कटार-धार सी तनी॥
दिव्य - दुर्ग-सामने रुकी प्रचण्ड - वाहिनी।
ज्यों अथाह - सिन्धु में मिली सुनीर - वाहिनी॥
दे दिया सँदेश शीघ्र हृष्ट - द्वारपाल ने।
नम्र - वीर-भाव से किया प्रणाम राव ने॥

हो कृतार्थ राव से मिली प्रसन्न चण्डिका।
ज्यों विशाल-विघ्न चीर हो खड़ी करालिका॥
फिर बनी सुयोजना नवीन-देश-क्रान्ति की।
जग गई सुकल्पना महान् देश-शान्ति की॥

फर फरा उठी ध्वजा स्वबंधु का मिलन हुआ।
थर४रा उठी त्रपा सुशक्ति का मिलन हुआ॥

जग उठी प्रजा नवीन भाव मुस्करा उठे।
एक साथ ही सहस्र-ओठ फरफरा उठे॥

जग उठे स्वजाति के दबे-व्रती-जवान भी।
जग उठे स्वतंत्र-आर्य-धाम के निशान भी॥

जग उठा पवित्र-आर्य-रक्त-मुण्ड-दान भी।
जग उठा पवित्र-रामराज्य का विधान भी॥

जग पड़े अगस्त्य धीर-सिन्धु काँपने लगा।
जग उठा नगेश शृङ्ग व्योम नापने लगा॥
जग उठे प्रताप वीर गान गूँजने लगा।
जग उठे शिवा स्वधर्म मस्त झूमने लगा॥

जग पड़ा स्वदेश-प्रेम तरु, पवन, पहाड़ में।
जग उठी नवीन-शक्ति आर्य-हाड-हाड़ में॥
जग पड़ा स्वतंत्र-शब्द सिंह की दहाड़ से।
जग पड़ा त्रिपुण्ड स्वस्ति मंत्र की पुकार से॥

सिंह नाद कर विहँस बढ़ो स्वदेश-प्रेमियों!
मुण्ड-माल हाथ ले बढ़ो स्वदेश-सेवियों!
मर्त्य-देह के लिए छुटे न सत्य-साधना।
तुम बढ़ो स्वबाहु को सुमेरु-दण्ड सा बना॥

सामने पहाड़ शृङ्ग धूल-कण समझ चढ़ो।
सामने कटार-धार फूल सा समझ बढ़ो॥
काल के कराल-वक्ष पर सहर्ष चढ़ चलो।
अग्नि-मार्ग चाँदनी बिछी विचार बढ़ चलो॥

सप्त-सिन्धु-गर्जना सहर्ष गान मान लो।
देवलोक भूमि है, कटार-वज्र जान लो॥
चण्ड-वायु सम प्रसन्न शत्रु पर बढ़े चलो।
रुद्र से प्रलय लिये परार्थ पर बढ़े चलो॥

रोक दे समुद्र तो अगस्त्य सा बनो बढ़ो।
टोंक दे नगेन्द्र दो प्रचण्ड बज्र सा बढ़ो॥
सामने अनीति हो कड़ी-कड़ी मरोड़ दो।
सामने कुरीति को तृणालि-तुल्य तोड़ दो॥

सत्य-मार्ग पर चलो, असत्य का विनाश हो।
नम्र-भाव जग पड़े, स्वधर्म का प्रकाश हो॥
शून्य-अंतरिक्ष में उड़े ध्वजा स्वदेश की।
सामने झुके ध्वजा महान देश-देश की॥

कर्म-वीर हो प्रसन्न कर्म-क्षेत्र में बढ़ो।
धर्म-वीर हो प्रसन्न धर्म-क्षेत्र में बढ़ो॥
त्याग हो महान बन्धु! साधना महान हो।
शीश हों सहस्र किन्तु एक प्राण-ज्ञान हो॥

हाथ में कटार हो, सुबुद्धि हो, विचार से।
नाम हो पृथक परन्तु एक देश-प्यार हो॥
एक ही सुजाति है यही सुलक्ष्य मान लो।
इति-भीति-नाश-अर्थ तुम कटार तान लो॥

झुक गये जवान ! तो स्वदेश आज झुक गया।
रुक गये जवान ! तो स्वदेश आज रुक गया॥
रख दिये सशस्त्र तो स्ववीर-मान घुल गया।
देश का विजय किशोर ! शून्य - बीच घुल गया॥

इसलिये महान यज्ञ है विलास त्याग दो।
नाशवान है सुरंग मोह - पाश त्याग दो॥
एक हो बढ़ो जयी ! सुकीर्ति ही महान है।
आज देश - बन्धुओं ! स्वधर्म ही स्वमान है॥

कालपी नगर के कण-कण में
गूँजा स्वदेश का मधुर - गान।
रानी के मंत्र फूकते ही
मुर्दों में भी आ गई जान॥

लेकर कर में चमचम कृपाण
दमदमा उठे सब नौजवान।
सुनकर वीरों का अटल - शपथ
थरथरा उठा था आसमान॥

बन्दे जननी हे जगदम्बे !
तुम पर अर्पण ये तुच्छ - प्राण।
आजाद - भूमि पर ही माता !
गाऊँगा तेरा यशोगान॥

इतना कहकर वीरों ने की
जय-घोष महाकाली की जय।
रण में मतवाली - मर्दानी
रानी की जय, रानी की जय॥

बीसवीं हुंकार

रानी का रसमय वीर भाव
कर पान वीर - मर्दानों ने।
मूँछों पर फेरा हाथ शीघ्र
हिन्दू-कुल-रत्न जवानों ने॥

अम्बर से मिले सन्देश उन्हें
हँस प्राण-प्रसून चढ़ाने का।
रण की गंगा में नहा-नहा
शोणित का अर्घ्य चढ़ाने का॥

फिर सेतु बनाकर शस्त्रों का
अरि को उस पार लगाने का।
नभ की छाती पर फर, फर, फर
यह वीर - ध्वजा फहराने का॥

झुककर वीरों ने मौन - मौन
अभिवादन किया भवानी का।
आगे आगे खूनी घोड़ा
था झाँसी की महरानी का॥

गढ़ जीत लुहारी का अरि - दल
बस शीघ्र कोंच की ओर चला।
था आर्य - धरा की छाती पर
दानवता का अभिमान चढ़ा॥

अब यही कालपी का रण है
वीरों की शक्ति परीक्षा का।
हिन्दू-कुल के अभिमान-मान
पावन - दुर्जेय - समीक्षा का॥

अब यहीं दिखानी है अपनी
पौरुष-रणनीति-कला लड़कर।
है मातृ-भूमि की पूजा अब
करनी कृपाण पर चढ़-चढ़कर॥

इस बीच आ गई रिपु-सेना,
रण-बाजे बजे जवानों के।
बाँहें फड़की, बिजली चमकी,
रद कड़क उठे मर्दानों के॥

फिर दोनों दल के वीरों ने
ललकारा निज प्रतिपक्षी को।
भिड़ गए वीर हुंकृत रव से
लखकर तब वहाँ विपक्षी को॥

असि फिरी, उड़ा सिर अम्बर में
गिर पड़ा कबन्ध महीतल पर।
जिस भाँति महातरु रव करता
सो जाता है अवनी-तल पर॥

तोपों का भैरव रव नभ की
छाती विदीर्ण कर गरज पड़ा।
चमका, छूटका फिर क्षण में ही
सावन के घन सम बरस पड़ा॥

हो गया व्योम में धुआँ - धुआँ
तलवार चमकती थी चमचम ॥
ज्यों महा-प्रलय की घटा-बीच
चपला करती हो चम, चम, चम ॥

बुन्देलखण्ड के नौजवान
शत - शत्रु-बीच हो एक लड़े।
ज्यों नीर-वाहिनी चीर रहे
शत शिला-खण्ड जल-बीच खड़े ॥

थी रानी की तलवार सतत
अरि के कण्ठों को काट रही।
नन्दन समान इस धरती से
थी वह अधर्म को छाँट रही ॥

उर में भजती जय - जय काली
असि से अरि-दल संहार रही।
रिपु-प्राणों का दीपक लेकर
नीराजन मौन उतार रही ॥

शिव - दूती से हँस-हँस कहती
शोणित से प्यास बुझा लेना।
जिसको जो ऋण हो तनिक शेष
क्षण में ही उसे चुका लेना ॥

शिव जी की ग्रीवा में लटकी
हो गई पुरानी माला थी।
इसलिये पिरोती थी रानी
अरि-सिर की नूतन - माला थी ॥

इतने से था सन्तोष नहीं
उस समर - भवानी - रानी को।
इसलिये दूसरी असि खींची
देखा उसके नव - पानी को॥

लेकर दोनों कर में कृपाण
वे लगीं दिखाने युद्ध-कला।
उस रण-मतवाली के सम्मुख
टिक सकता था अब कौन भला?

दाँतों से ले पकड़ी लगाम
अम्बर में उड़ता घोड़ा था।
उस वायु-विदारक घोड़े के
सिर पर न तड़पता कोड़ा था॥

वह कभी युद्ध के बीच कभी
इस पार, कभी उस पार गया।
उसकी पुतली के फिरते ही
अरि-दल पर लकवा मार गया॥

तोपों के गोलों की भी वह
करता था कुछ परवाह नहीं।
वह दौड़ रहा था क्षेत्र बीच
मिलता समीर को राह नहीं॥

अम्बर कहता रानी की जय
भूतल कहता रानी की जय।
प्रतिपल यह रव था गूँज रहा
रानी की जय, रानी की जय॥

पकड़ो रानी को कहते ही
सिर धड़ से अलग छटकता था ॥
'घोड़ा आया' यह कहते ही
हय सिर पर टाप पटकता था ॥

मुँह खुला अगर ललकारों में
तो खुला सदा रह जाता था।
दृग निनिमेष ही लिए शीश
कटकर भू पर सो जाता था ॥

कालपी नगर के नौजवान
रिपु दल में घुसते जाते थे।
शोणित से रँगे समीरण में
वे खड्ग लिए लहराते थे ॥

लेकिन अनुशासन था ढीला
सब अपने मन के थे स्वतन्त्र।
रानी का भी उनके ऊपर
इसलिए न चलता एक मंत्र ॥

इस हेतु आ गया वीरों पर
क्षण में ही दुर्दिन का फेरा।
अरि-रूपी अन्तक का क्षण में
घिर गया सामने नव - घेरा ॥

रिपु-दल की तोपें गरज-गरज
थी लगी उलगने आग प्रबल।
जननी के अंचल पर सपूत
क्षण भस्म लगे होने जल-जल ॥

इस बीच व्यूह को त्वरित चीर
रानी पहुँची रणधीरों में।
नव - मंत्र फूँकने लगी शीघ्र
कालपी नगर के वीरों में॥

क्या देख रहे हो हे वीरों!
रणभूमि नहीं सोने को है।
भारत-जननी का पद-पंकज
अरि-शोणित से धोने को है॥

इसलिये बढ़ो, चिन्ता न करो
रंचक इन नश्वर प्राणों की।
वैरी की छाती पर गरजो
कुछ भीति न हो अरि-बाणों की॥

अरि की तोपों के मुँह में ही
विकराल बाहु दो अभी डाल।
अपनी सेना के सम्मुख अब
रुक जाये आकर महाकाल॥

दूना उत्साह बढ़ा फिर से
जननी के वीर - सपूतों में।
जागा वह पिछला वीर-भाव
काली के भीषण - दूतों में॥

फिर भभक उठी क्रोधाग्नि शीघ्र
उन क्षत्रिय - वीर - कुमारों में।
वे कूद पड़े अरि-तोपों के
दुर्गम गोलों की मारों में॥

मच गया प्रलय अरि के दल में
बुन्देलों की हुंकारों से।
छूटे शोणित के फौवारे
रानी की असि के वारों से॥

पट गई मेदिनी लाशों से,
आकाश भर गया प्राणों से।
हो गया पवन का तन जर्जर
गोली, गोलों से बाणों से॥

चलदल सम कँपी दिशायें भी
रणधीरों की ललकारों से।
तमतमा उठी रवि की किरणें
वीरों के शर के वारों से॥

डर गया रोज यह देख नया
रण - नाटक का पट-परिवर्तन।
था मर्मस्थल धड़धड़ा उठा
देखा निज - दल का अधः पतन॥

तब शोकाकुल सिर पर कर रख
वह लगा सोचने मार्ग नया।
उसकी इस दीन - दशा पर थी
आई विजया को बड़ी दया॥

इसलिए रोज के पास पहुँच
वह लगी बताने युक्त नई।
इस बीच वहाँ आया स्टुअर्ट
लेकर विशाल - वाहिनी नई॥

हँस पड़ा रोज, विहँसी विजया
वह टूट पड़ा रणधीरों पर।
तोपें भी लगी उगलने विष
बुन्देलखण्ड के वीरों पर॥

अब रही न जय की आशा थी
जननी के वीर - सपूतों को।
मिल गई विजय फिर अनायास
निर्मम - अधर्म के दूतों को॥

फिर भी रानी को आशा थी
संग्राम विजय कर लेने की।
खप्परवाली के खप्पर को
अरि - शोणित से भर देने की॥

पर वह भी क्या कर सकती थी
घावों से तन भी था जर्जर।
घोड़े के तन से झरता था
शोणित का निर्झर, झर, झर, झर॥

बच गए उँगलियों पर गिरने
भर के ही भारत-नौजवान।
उस ओर गरजता था अरि-दल
प्रतिपल प्रलयंकर - घन - समान॥

नव - विजय - गर्व से अरि-झण्डा
गढ़ मस्तक पर फरफरा उठा।
मेदिनी हिली, हिल पड़ा अचल,
बूढ़ा - भारत थरथरा उठा॥

पश्चिम से रोती बिलखाती
सन्ध्या चल पड़ी भवन से थी।
उन सोते हुए सपूतों को
ढक रही करुण अंचल से थी॥

इक्कीसवीं हुंकार

अभी उषा की वेणी में था
गुँथा हुआ मोती का हार।
लेकर रवि-कर की वह कूँची
तममय - आँगन रही बुहार॥

अरुण - कपोलों की लाली में
चमक रहा था चमचम द्वार।
सत्य और शिव सुन्दर की नव
विहँस रही थी छवि साकार॥

कलियाँ किसलय की थाली में
लिए हुए पूजन-उपहार।
देख रही थी सजल नेत्र से
प्रभु का तम से धूमिल द्वार॥

पवन दे रहा था जल-थल पर
घूम-घूमकर यह सन्देश।
पूजा की वेला है त्यागो
नींद, सजाओ पावन - वेश॥

सुना रहे थे अलिगण सबको
जगदीश्वर का शुचि - गुन - गान।
दीप हो चला था दल-दल पर
लगना सौरभ का नव - ध्यान॥

जगा ग्वालियर-गढ़ निद्रा से
जगी पताका नभ में लाल।
रानी भी प्रभु का पूजन कर
लेकर सखियों को तत्काल॥

चली देखने गढ़ को चहुँदिशि
विकट - पहाड़ी - तममय - कोट।
जहाँ बनाई जा सकती थी
रण के लिये सुरक्षित - ओट।

तीन ओर से दुर्ग सुशोभित
भरता था भूधर की गोद।
चौथी ओर सोनरेखा का
नाला बहता था सविनोद॥

उसके पार गहन - जंगल था
जिसमें हँसती दिन में रात।
बिछे हुए थे अवनी-तल पर
शैय्या सम कुछ सूखे पात॥

कहीं झाड़ियों के काँटों में
हँसते थे किसलय के गात॥
जहाँ पहुँचने में डरता था
सरस - सलोना - स्वर्णिम - प्रात॥

देख वनाली की स्वतंत्रता,
सुनकर निर्झर का कल - गान।
योगी सा लग नया शीघ्र ही
रानी का क्षण भर को ध्यान॥

लगी सोचने मन ही मन में
कैसा है वन का व्यवधान ॥
शान्त रूप से जड़-जंगम का
निश्छल हैं आदान-प्रदान ॥

यह स्वतन्त्रता जड़-जंगम में
मानव में भीषण - तूफान।
हत्या - लूट - स्वार्थपरता का
गरज रहा है सिन्धु महान ॥

अपनी ही जड़ के थाले में
तरु-तरु में ऐसा सन्तोष।
रवि के उदय अस्त तक भू पर
मानव में हैं व्याप्त अतोष ॥

रवि का जीवनमय - प्रकाश है
अवनी का रसमय अहार।
चला रहा वन के तरु-तरु के
जीवन का है नित व्यापार।।

इतने ही पर हैं प्रसन्न सब
सबमें है अपना उत्थान।
सब में है निज स्वत्व-चेतना,
अपने गौरव का सम्मान ॥

अपनी जन्म-भूमि की रक्षा
करने में है निशि-दिन लीन।
यहाँ न कोई शोषक ही है
और न कोई शोषित - दीन ॥

अपनी शीतल - छाया से हैं
करते माँ का शीतल - गात ।
और खिलाते मातृ-भूमि को
देकर तन का प्यारा - पात ॥

घाम-शीत को तरुवर हँसकर
लेते हैं मस्तक पर रोक ।
अपने ही कोमल - तन पर हैं
लेते वर्षा-शर भी रोक ॥

ये द्रुम-दल हैं सच्चे सेवक
करते जन-जन का उपकार ।
देकर अपने पुष्प-प्राण भी
करके माता का शृङ्गार ॥

मानव तो है परम स्वार्थी
भूल गया अब माँ का ध्यान ।
थोडे से धन के पीछे वह
सहता जग में कष्ट महान ॥

उसे तनिक भी ज्ञान नहीं यह
माता है रत्नों की खान ।
जिसकी सेवा करने में ही
सब कुछ पाना है आसान ॥

इसी भूमि मे ही है जन्मे
गौतम-वाल्मीकि मतिमान ॥
और इसी बन-तरु के नीचे
जागा पावन - उज्ज्वल - ज्ञान ॥

फिर अलियों की कल कल ध्वनि से
छूटा रानी का वह ध्यान।
बढ़ी शीघ्र उस ओर जहाँ था
मृदु-द्रुमयय दूर्वा-मैदान॥

जिस पर की बिखरी मुक्ता को
रवि ने हँसकर लिया बटोर।
था जिसके कुछ दूर विहँसता
हरा-भरा जंगल का छोर॥

उसी वनस्थल के प्रांगण में
बनी हुई थी कुटिया एक।
जिसके चारों - ओर राजता
संसृति का था विमल - विवेक॥

सघन - द्रुमो की छाया में था
शीतलता का सुन्दर - धाम।
जहाँ बैठकर मृग-केहरि सँग
करते से सुख से आराम॥

श्येन-संग तरु की शाखा पर
बैठ विहग थे गाते गान।
विचर रहे थे सर्प धरा पर
मोर नाचकर देते तान॥

फल से लदी हुई शाखाएँ
रहीं कुटी को झूककर चूम।
सौरभ पुष्पों से उड उडकर
रहा धरा पर चँहु - दिशि धूम॥

शान्त - उटज के हरित - द्वार पर
फूलों से हँसती थी घास।
जिस पर काली - मृगछाला पर
ध्यान-मग्न थे गंगादास ॥

देख सौम्य - तेजोमय - आनन
उर में जागा ऐसा ज्ञान।
क्या ब्रह्मर्षि वशिष्ट स्वयं तो
नहीं लगाए बैठे ध्यान ?

रानी प्यासी सखियों को ले
पहुँची शान्त - कुटी के पास।
उसी समय मृगछाला पर से
उठे मुदित - मन गंगादास ॥

उस यतीन्द्र ने मुड़कर देखा
खड़ी भवानी थी साकार।
श्वेत - वाजि था पार्श्व - भूमि पर
कटि से लटकी थी तलवार ॥

पहुँच गया ब्रह्मर्षि-चरण पर
रानी का कर-पल्लव लाल।
आशीर्वचन सुनाता विहँसा
त्रय - वलियों का शीतल - भाल ॥

तृषा शान्त कर तरु-छाया में
प्रिय सखियों को लेकर साथ।
मुदित भाव से बोली रानी
"आज हुई मैं ईश ! सनाथ" ॥

चमक उठा तेजोमय आनन
विहँस उठा प्रज्ञा का धाम।
"कहो भवानी! स्पष्ट बताओ
मेरे योग्य कहीं हो काम॥"

बोली रानी माथ नवाकर
"प्रभुवर! लेना है कुछ ज्ञान।
जिससे मैं कर सकूँ शक्ति भर
जननी-जन्म-भूमि का मान॥

"अम्बे! मैंने तो जीवन भर
किया ईश का ही गुण-गान।
तो मुझे में है कौन शक्ति जो
दे सकता हूँ नूतन - ज्ञान॥

फिर भी यथाशक्ति होवेगा
इस नश्वर तन से सम्मान।
थोड़े से जीवन में जो कुछ
हो जावे है वही महान॥

पुनः! विहँसकर बोली रानी
"हे प्रभुवर हे पुण्य-ललाम!
सद्विचार, आलोक विश्व के
ज्ञानवान, वैराग्य सुधाम!

अब स्वराज्य कैसे पावेगा
आर्तनादमय भारत - देश?
अब कैसे चमकेगा इसका
चम-चम करता नूतन - वेश?

व्यंग्य भाव में बोले ऋषिवर
कैसे होगा इसका वेश ?
"इसका उत्तर दे सकते है
बस स्वदेश के वीर - नरेश ॥"

"नहीं प्रभो ! वह केवल भ्रम है
रहा न अब ऐसा व्यवहार।
अब स्वदेश के राजाओं में
रहा न वैसा शुद्ध - विचार ॥

इसीलिये प्रभु की सेवा में
हुये उपस्थित हैं ये प्राण।
अब केवल मुझ को मिल सकता
इस कुटिया से ही है ज्ञान ॥"

हुई शान्त मुद्रा त्यागी की
गूँज उठा क्षण में बरदान।
"जैसे अब तक होता आया
वैसे ही होगा सम्मान ॥"

बात न समझी कुछ वह रानी
जगी व्यग्रता की फिर रेखा।
सरल - भाव में लगे सुनाने
रानी की चिंता को देख ॥

"अम्बे ! बात न समझी हो तो
फिर से सुन लो देकर ध्यान।
स्वतंत्रता दे सकता केवल
त्याग, तपस्या या बलिदान ॥

जैसे गर्त भरा जाता है,
पूरी की जाती है नींव।
वैसे इस स्वातंत्र्य - नीव को
भर सकते हैं नश्वर - जीव ॥

जब होवेगा ईंट विपद के
आँवें में तप - तपकर प्राण।
तब स्वातंत्र्य भवन का होगा
भूतल पर फिर से निर्माण ॥

समय - चक्र को पुनः नचावे
वीर - सपूतों का नव - त्याग।
जगे उच्च - भवनों से लेकर
झोपड़ी में नवल - विराग ॥

वर्ण - वर्ण का भाव मिठाकर
गावें फिर से जय का गान।
रन्तिदेव के सत्यासन पर
जागे फिर दधीचि का ज्ञान ॥

सबके उर में एक कहानी
रमती रहे सतत - अविराम।
एक देश है, एक वेश हैं
और एक है सबका धाम ॥"

रानी ने फिर कहा विहँसकर
"हे अनन्त के सत्य विवेक!
अभी हृदय को विकल कर रही
यह नवीन जिज्ञासा एक ॥

क्या हम सब भी देख सकेंगी
वह स्वतन्त्रता का प्रासाद ?
जब भारत का तृण-तृण, कण-कण
विहँसेगा होकर आजाद ?

उच्च - हिमालय के मस्तक पर
चमकेगा जब चमचम ताज।
अन्तरिक्ष से अवनी-तल तक
होवेगा अपना ही राज ॥

कन्या से नागा पर्वत तक
ब्रह्मा से अफ़गानिस्तान।
एक राग जब गूँज उठेगा
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥"

"यह कैसी मृगतृष्णा रानी !
कैसा यह मायामय रूप ?
कभी नहीं कंगूर देखती
पड़ी नींव में ईंट अनूप ॥

यद्यपि रहती ढकी किन्तु है
वही भवन का दृढ़ आधार।
उसके ही अनवरत त्याग का
रूप भवन होता साकार ॥

इसी भाँति हे सर्वमंगले !
कही नहीं जा सकती बात।
दिखलाई देगा क्या इस क्षण
वह स्वातंत्र्य भवन साक्षात ?

किन्तु भवन की नींव पड़ गई
मातु ! इसी से हो सन्तोष।
आने वाले पूरा करके
पावेंगे इससे परितोष॥

है स्वतंत्रता के मिलने में
अमर निशानी ! अभी विलम्ब।
अभी सपूतों के पौरुष का
लेना है माँ को अवलम्ब॥"

इतनी कह भविष्य की बातें
हुए जितेन्द्रिय हर्षित मौन।
सान्ध्य गीत था सुना-सुनाकर
खग-कुल हुआ विटप पर मौन॥

चली भवानी शीश नवाकर
चंचल घोड़े पर सविचार।
लौट पड़ी सखियों के सँग में
क्षण में नाले को कर पार॥

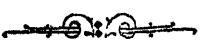

बाइसवीं हुंकार

चल पड़ा सूर्य उषा-गृह से
रक्तिम - आनन चमचमा रहा।
कर से भूतल के कण-कण को
वह द्रुतगति से था जगा रहा॥

था फैल गया नव - ताप त्वरित
वन, उपवन, नदी, कछारों में।
छाया निदाघ का असह दाघ
जल, थल, तृण अगम पहाड़ों में॥

जल उठा क्रोध की ज्वाला से
सागर, सरिता, सर-वक्षस्थल।
रण करने को थरथरा उठा
तरु-तरु का नव - रक्तिम-दल-दल॥

क्रोधाग्नि धधकने लगी शीघ्र
मारुत की गति में हहर - हहर।
चल पड़ी चूमने व्योम धूल
जय-ध्वजा उड़ाती फहर - फहर॥

चल पड़ीं देश बुन्देले की
ललनाएँ नव शृङ्गार किए।
सोने की थाली में पति की
पूजा का नव - उपहार लिए॥

पति का रण-साज सजाकर वे
चमचम करती तलवारों से।
मस्तक पर शुचि - पद-धूल लगा
कहती थी वीर कुमारों से॥

"हे नाथ! कभी न झुके यह सिर
अरि-दल के तीखे वारों में।
हे प्राण! कभी न रुकें ये पद
विघ्नों के तप्त - अँगारों मे॥

रचकर मुण्डों का नव पहाड़
चढ़ उसकी उन्नत - चोटी पर।
लिख देना मेरे हे सुहाग!
वीरत्व-गान अरि - बोटी पर॥

शोणित के सागर पर तरणी
तिर चले वीर-सम्मानों की।
गूँजे कण-कण में एक बार
फिर से गाथा बलिदानों की॥

जीते जी कर रण - सिन्धु पार
छाती उत्तान करके आना।
मेरे सुहाग की लाली से
हे नाथ! पुनः आ लहराना॥"

कहती थीं बहनें "हे भ्राता!
भाई का मान बढ़ा देना।
अरि-सिर का रचकर मुण्ड - माल
शंकर को मुदित चढ़ा देना॥

खप्परवाली के खप्पर में
जीभर रिपु-शोणित भर देना।
निज चन्द्रहास की लपटों से
माता का संकट हर लेना॥

चमचम हिमनग के मस्तक पर
जय - मुकुट प्रसन्न चढ़ा देना।
यदि सम्मुख काल खड़ा हो तो
छाती मे कुन्त बढ़ा देना॥

कहना उससे है भेंट यही
भारत के नव - रणधीरों का।
कह देना उससे टेक यही
है भरतखण्ड के वीरों॥"

माता कहती हे वीर पुत्र!
तुम दूध कलंकित मत करना।
हँस-हँसकर तप्त अँगारों को
तुम फूल समझकर पग धरना॥

दुर्द्धर्ष - अनल की लपटों को
पुष्पों की सुरभि समझ बढ़ना!
रिपु-दल के शस्त्र-प्रहारों को
सुमनों की मार समझ चढ़ना॥

सागर गौ-पद सम छोटा है
यह समझो मेरे वीर - लाल!
ऐसा धक्का देना जिससे
अरि-तन में उठने लगे साल॥

परवशता का हो जाय अन्त
निर्ममता भी थरथरा उठे।
निज जाति-धर्म का विजय-केतु
नभ-मस्तक पर फरफरा उठे॥

यश-जलद गगन में छा जावे,
कड़कड़ा उठें युग की कड़ियाँ।
जननी की आँखों से पोंछो
तुम आँसू की अविरल लड़ियाँ॥

पर ध्यान रहे हे कुल-दीपक!
मानस के मेरे अचल प्राण!
तुमको करना है पुरखों को
गौरवमय - पावन - अर्घ्य-दान॥

हम वीर-देश की माताएँ,
हम वीर-वेश की रानी है॥
मेरा कहता है रोम-रोम
क्षत्राणी हैं, क्षत्राणी है॥

जिसने अकबर की छाती पर
चढ़कर कटार थी चमकाई।
रण का डंका था बजा-बजा
अरि-कण्टों पर असि दमकाई॥

मेरा यह है बुन्देलखण्ड
मै इसकी रक्षा कर लूँगी।
यदि समय कहेगा तो माँ की
मुण्डों से झोली भर दूँगी॥

दे-देकर विदा जवानों को
ग्रीवा में डाली मालाएँ।
चल पड़ीं धाम को मुदित-बदन
माताएँ, बहनें, बालाएँ॥

क्षण चहुँ-दिशि से आ-आकर के
जुट गए वीर-रण-सेनानी।
सबके कर में लहराते थे
स्वातंत्र्य केतु जय-अभिमानी॥

रानी बैठी अमराई में
हँस कहती थी सरदारों से।
थी ताप ले रही रवि किरणें
तीखे भालों की वारों से॥

चुप पत्ता-पत्ता सुनता था
वह रण-सन्देश भवानी का।
केवल अम्बर दुहराता था
जयघोष नए सेनानी का॥

हे माता के सच्चे सपूत
वीरों के पथ के अनुगामी!
सबके उर में है बसा हुआ
गीतावाला अन्तर्यामी॥

उसने ही इसे बताया है
वीरों की गति है धारों पर।
यदि नभ भी आ टूटे तुम पर
तो रोको उसे कटारों पर॥

वह ही है सबको डुला रहा,
है कुन्तों में उसकी ज्वाला।
इसलिए धर्म के धागे में
रचनी है कर्मों की माला॥

यह है अन्तिम संग्राम आज
कुछ नयी-बात बतलानी है।
फिर दूने बल से आगे बढ़
रणभेरी आज बजानी है॥

हे वीर कुँवर रघुनाथ सिंह!
सुत को निज हय पर बैठाओ।
इसके भविष्य के जीवन को
शत-शत वत्सर तक फैलाओ॥

यदि जयलक्ष्मी ही रूठ जायँ
तो सुत का प्राण बचा लेना।
अरि से छिप दक्षिण भारत में
रक्षित इसको पहुँचा देना॥

यह कह कर राजभवानी ने
जननी का जय-जयकार किया।
तृण-तृण कण-कण के मानस में
वीरत्व-भाव-संचार किया॥

बज उठा शीघ्र रण-वाद्य वहाँ
घन-घन अम्बर घनघना उठा॥
हथियारों की झनकारों से
पत्थर-पत्थर झनझना उठा॥

उस भीमनाद से क्षण में ही
संग्राम-भूमि थरथरा उठी।
नभ के मस्तक पर हहराती
वीरत्व-ध्वजा फरफरा उठी॥

कम्पित हो गूँजी अमराई,
रवि का आनन दमदमा उठा।
हाथों के वीर सपूतों के
सब लौह-शस्त्र चमचमा उठा॥

माँ की गोदी में उछल पड़े
सुत छोटी सी तलवार लिए।
उठ बैठे रुग्ण अशक्त शीघ्र
दुख की छाया का त्याग किए॥

हाथों में अरघा लिए विप्र,
हल थामे कृषक भुजाओं से,
ठिठके क्षण में पन्थी पथ पर
आहत हो ध्वनि के घावों से॥

रुक गया पवन ध्वनि को पथ दे,
सब दिग्दिगन्त भी काँप उठे।
रवि-किरणों की शुभ-रज्जु बढ़ा
सारा भूतल वे नाप उठे॥

इस बीच अस्तबल से सुन्दर
लायी नूतन - चञ्चल - घोड़ा।
जो रूप, रंग या फुर्ती में
पहले घोड़े का था: जोड़ा॥

रानी ने कहा महा अड़ियल
यह घोड़ा है मेरी आली !
सुन्दर रह गई खड़ी निश्चल
छा गई कपोलों पर लाली ॥

क्या कर सकती अब समय न था
फिर से नूतन हय लाने का।
जीवन की बाजी लगा - लगा
अनुपम - सेवा दिखलाने का ॥

रानी लेकर कर में कृपाण
उस घोड़े पर असवार हुई।
उस विघ्ननाशिनी काली की
आकृति भू पर साकार हुई ॥

सन्नद्ध हो गए वीर सभी
ले लेकर निज पैने भाले।
रण के दीवाने मचल पड़े
अरि-उर-माला सीनेवाले ॥

चल पड़ी वाहिनी रण करने
पीछे रज था नभ चूम रहा।
जिससे दिन में छाई रजनी
था चन्द्र बना रवि घूम रहा ॥

ज्यों वेगशालिनी - नद - सरिता
भैरव - रव में हो हहराती।
प्रतिकूल शैल को चूर्ण-चूर्ण
करने को हो बढ़ती जाती ॥

या क्षुधित व्याघ्र विकराल त्वरित
जल जठरानल की ज्वाला से।
ज्यों टूट पड़े मृग के ऊपर
नव-लता-गुल्म की माला से॥

उस भाँति ग्वालियर प्रान्तर के
थे सेनानी सब टूट पड़े।
सौ-सौ तोपों से एक साथ
ज्वालामय गोले छूट पड़े॥

हो गए तिरोहित कई सहस
समरांगण में अरि- सेनानी।
सब के आगे थी गरज रही
घोड़े पर झाँसी की रानी॥

सातंक किसानों ने समझा
घनहीन तडित् है कड़क रही?
यवि का निपात ही समझ इधर
उनकी छाती थी धड़क रही॥

घुस गए कोटरों में पक्षी
भय से शावक को साथ लिए।
बाँ-बाँ कर गौएँ वत्सर-सँग
भागी मुख अम्बर - ओर किए॥

गौएँ जब भागी अपने घर
वे काँप रही थी थर-थर-थर।
चल रहा पसीना था कोमल
रोमावलियों से तर -तर - तर॥

फिर भी तोपों का चलता था
हुङ्कार धरा की छाती पर।
तम-तोम धुएँ का छाया था
दिनकर की जलती छाती पर॥

कर रही दिशाएँ थी घड़, घड़
लड़-लड़ पत्थर थे टूट रहे।
सावन के घन के शर-सम थे
तोपों से गोले छूट रहे॥

भीषण-गोलों की रंचक भी
चिन्ता न भवानी करती थी।
शिव-दूती का रीता खप्पर
हर-हर गति से वह भरती थी॥

नव हुजर सवारों का हमला
था कड़ाबीन बन्दूकों से।
जिसको झाँसी के वीरों ने
रोका कटार की नोंकों से॥

रानी घोड़े को एड़ लगा
समरांगण को थर्राती थी।
चढ़ने को स्वर्ग सपूतों को
अरि-सिर-सोपान बनाती थी॥

तलवार किधर कब उठती थी
कब किधर छपाछप करती थी।
यह भी अरि दल को ज्ञान न था
कब किधर लपालप करती थी॥

केवल इतना कह पाते थे
रानी आई, रानी आई।
तब-तक सिर धड़ से अलग लोट
भू पर कहता रानी आई॥

जब तक घोड़े की टापों की
ध्वनि ही अरि-दल सुन पाता था।
तब-तक रानी का खड्ग तुरत
बन मृत्यु शीश पर आता था॥

दाएँ-बाएँ दो हाथों से
रानी थी रिपु-सिर काट रही।
स्वातंत्र्य-भवन की नई नींव
थी शत्रु-मुण्ड से पाट रही॥

मर गए लाल कुर्तीवाले
सब शूर शत्रु के वारों से।
अरि का सिर भी फिर लुढ़क पड़ा
रानी की दो तलवारों से॥

दिनभर का श्रान्त समीरण भी
घावों से था लड़खड़ा रहा।
शोणित के निर्झर में उसका
मानस भी था थरथरा रहा॥

रह गए चार ही शेष वहाँ
संग्राम-भूमि में सेनानी।
जिनको लेकर थी काँप रही
अरि का उर झाँसी की रानी॥

उस ओर शत्रु-दल में पन्द्रह
थे कड़ाबीन तलवार लिए।
आगे थे कुछ गोरे सैनिक
संगीनदार खरधार लिए॥

रानी ने पीछे मुड़ देखा
रघुनाथसिंह थे गरज रहे।
रिपु-दल का अवयव छाँट-छाँट
आगे बढ़ने से बरज रहे॥

फिर रानी दूने साहस से
दोनों कर की तलवारों से,
पथ लगी बनाने रिपु-दल में
पवि-सम निज तीखे वारों से॥

संगीनदार संगीन लिए
भूतल पर सोते जाते थे।
निज शोणित से रंजित होकर
टेसू के सम लहराते थे॥

इस बीच लगी संगीन-हूल
रानी की छाती के नीचे।
फिर भी रानी ने सुला दिया
उस अरि को पैरों के नीचे॥

बह रहा रक्त था तर, तर, तर
इस पर छा गई निराशा थी।
पर आँत न बाहर आई थी
इस पर ही जय की आशा थी॥

रानी ने सोचा मैं भी अब
स्वातंत्र्य नीव की ईंट बनी।
छा गई सजल - दृग के सम्मुख
वेदना - निराशा बनी घनी॥

क्षण में फिर रानी गरज उठी
तलवार चमाचम चमकाती।
श्वेतांग दनादन छाँट - छाँट
शोणित से रंजित लहराती॥

घोड़ा भी दूने साहस से
उड़ गया गगन की छाती पर।
टापों से घाव लगा करने
रिपु - दल के जय की छाती पर॥

रानी थी आगे निकल गई
साथी सब थे दाएँ - बाएँ।
जयलक्ष्मी भी मुसकाती थी
उन वीरों के दाएँ - दाएँ॥

पीछे - पीछे दस घुड़सवार
गोरे बढ़ते ही आते थे।
अपनी पैनी तलवार - साथ
बन्दूकें सतत चलाते थे॥

इतने में गोली लगी एक
बढ़ती सुन्दर की छाती में।
मानो वह तीर लगा माँ की
युग की संचित सी थाती में॥

सो गई शीघ्र वह यह कहती
रानी की जय, रानी की जय ॥
नव - स्वतंत्रता की तपस्विनी
रानी की जय, रानी की जय ॥

रघुनाथ सिंह ने उसे उठा
कस लिया पीठ पर कपड़े से।
हन्ता को क्षण में सुला दिया
रानी ने असि के थपड़े से ॥

क्षण में घोड़े की बाग मुड़ी
पड़ गया पवन से था पाला।
था वहाँ सोनरेखा का ही
बन गया दुःखमय वह नाला ॥

पीछा करनेवाले गोरे
अब पाँच बचे दिखलाते थे।
शोणित से रंजित द्रुतगति में
पिस्तौल चलाते आते थे ॥

रानी का वह अड़ियल घोड़ा
दो पैरों पर हो गया खड़ा।
कसते - कसते भी उसने था
दोनों पग भू पर दिया गड़ा ॥

गोरे इतने में पहुँच गए
रानी उलझन में पड़ी रही।
बाएँ कर की तलवार फेंक
कर से आयाल धर अड़ी रही ॥

इतने में गोली लगी एक
बायाँ जंघा थरथरा उठा।
शोणित का फव्वारा रानी के
जंघे से फरफरा उठा॥

दुर्द्धर्ष अनल - सम क्रोधानल
रानी के मुख पर दमक उठा।
वैरी - सिर भू पर लुढ़का कर
दाएँ-कर - सायक चमक उठा॥

चारों ओरों से घिरकर भी
एकाकी रानी लड़ती थी
उर से, जंघे से शोणित की
कल - कल परनाली बहती थी॥

इसकी उसको चिन्ता क्या थी
सिर पर केसरिया बाना था।
स्वातंत्र्य भवन के दीपक को
झंझट में सतत जलाना था॥

मँझधार पड़ी जग की नौका
कर-बल से अभी बढ़ाना था।
स्वातंत्र्य - सिन्धु के शुभ - तट तक
आगे बढ़ उसे दिखाना था॥

पावन - सन्देश धरातल पर
संकट में अभी सुनाना था।
निज उर का देकर नव - प्रकाश
नारीत्व-कुसुम विकसाना था॥

अरि-दल की हृदय-शिला पर भी
असि से गाथा लिख देनी थी।
इस महायज्ञ की सुरभि अभी
जन-जन-उर में भर देनी थी॥

घोड़ा अड़ियल था अड़ा रहा
रानी इससे कुछ बढ़ न सकी।
दुस्तर की छाती पर प्रस्तर
दहला कर भी वह चढ़ न सकी॥

उस नियति नटी के नाटक से
कोई भी जग में बच न सका।
उर की स्वर्णिम आकांक्षाएँ
रंजित - दिन-पट पर रच न सका॥

छिपकर पीछे से वैरी ने
रानी पर असि का वार किया।
सिर का बायाँ तट सिर से चट
शोणित से रंजित काट दिया॥

उसके झटके के साथ-साथ
रानी का बायाँ नेत्र गिरा।
अब उधर हमारी सेना की
आशा पर पानी आज फिरा॥

इस पर भी समर - भवानी ने
गोरा - धड़ भू पर लिटा दिया।
कितने लोहित - श्वेतांगों को
कर ढेर धरा पर बिछा दिया॥

विकराल - कालिका सी रानी
झटपट घोड़े से उतर पड़ी।
असि का कौशल दिखलाने को
भूतल पर आकर हुई खड़ी ॥

वह टूट पड़ी फिर गोरों पर
तन शोणित से हो गया लाल।
या रोम-रोम से चण्डी के
वह धधक रहा था क्रोध ज्वाल ॥

अब दो गोरे रह गए शेष
हुंकृत रानी फिर जूझ पड़ी।
या क्षुधित सिंहिनी ही अपने
शिशु-हन्तक पर हो टूट पड़ी ॥

लपलप करती असि - नागिन ने
गोरे - मुण्डों को चाट लिया।
उन दोनों श्वेत - कबन्धों से
पथ-गर्त स्वत्व का पाट दिया ॥

उन दोनों श्वेत - कबन्धों पर
रानी पद रखकर खड़ी हुई।
या शुम्भ-निशुम्भों के तन पर
दुर्गा ही तनकर खड़ी हुई ॥

स्वातंत्र्य भवन की देवी को
रानी ने झुककर नमन किया।
गुरु भोपटकर के मंत्रों का
मानस में फिर से मनन किया ॥

गिर पड़ी हाथ से बाल - सखी
जो अब तक सँग में खेली थी।
जिसने रानी की सब विपदा
अपने ही ऊपर झेली थी॥

रानी माता की जय कहती
वसुधा पर थी लड़खड़ा चली।
रवि की किरणें हो प्रभाहीन
क्षितिजांचल पर हड़बड़ा चली॥

रघुनाथसिंह ने आगे बढ़
गिरने से उसको बचा लिया।
मूर्छित रानी को धीरे से
अपने घोड़े पर बिठा दिया॥

सुत सिसक - सिसककर रोता था
मुख स्नेह-नीर से धोता था।
माता के अतुलित मानस में
अनुभाव-बीज वह बोता था॥

उस कुटिया पर जो श्रीहत हो
तम-पट में छिपती जाती थी।
चल पड़े सभी रानी को ले
आँखें आँसू बरसाती थीं॥

महाप्रस्थान

निष्प्रभ - शोणित से रंजित मुख पड़ा हुआ था लाल।
फूट - फूटकर बिलख रहा था पार्श्व-भूमि पर लाल॥
आगे - आगे वल्गा पकड़े घोड़े का रघुनाथ।
चले जा रहे थे द्रुतगति में घोर - व्यथा के साथ॥

शोकाकुल - डगमग - पग रखता चलता मन्द - समीर।
रव भी तरु-किसलय-अधरों पर होने लगा अधीर॥
मूर्च्छित तन रानी का हय पर, सिर पर असि का वार।
जिसके ऊपर विहँस रहा था दुर्दिन का गुरु-भार॥

तम-प्रकाश - रण-शोणित - लोहित-अस्ताचल-मुख देख।
खिचने लगी भानु के मुख पर चिन्ता की नव - रेख।
कहने लगा वीर - सेनानी लख रवि का प्रस्थान।
इधर भवानी के पीड़ा से सूख रहे थे प्राण॥

"जाते हो दिन मणि ! अम्बर को धीरे-धीरे छोड़।
हँसते हुए कमल-वन से क्यों ऐसा नाता तोड़?
उदय हुए थे मन में लेकर कितना बड़ा उछाह।
और जा रहे हैं अब जग की करके धूमिल राह॥

अवनी-अम्बर-बीच विश्व के तुम ही हो आधार।
सोचो तनिक धरा पर जग का चलता जो व्यापार॥
प्रातःकाल जगाया जग को तब था क्या उल्लास।
वीर-देश के मानस में था हँसता विजय-प्रकाश॥

नभ कहता था विजय रहेगी, जन-मुख पर था हास।
विहँस उठा था आर्य-देश का फिर से नव-इतिहास॥
माताओं का वीर-वेश में सुत को था सन्देश।
अरि की बोटी-बोटी पर लिखना रण का उपदेश॥,

ललनाओं ने पति को भेजा था करके रण-साज।
क्या रख पाए वीर-केसरी अपनेपन की लाज?
बहनें मालाएँ पहनाकर कहती थीं जो बात,
क्या उसका प्रभु! नहीं तनिक भी है उर पर आघात?

क्या सन्देश दे गया था वह प्रातः मन्द-समीर
रण में किस निमित्त आए थे सब बुन्देले वीर?
सबको क्या मिल गया विश्व में इच्छित फल भगवान?
जो जाते हो अस्ताचल को लेकर जग के प्राण॥

तुम्हीं स्वयं जब भगते जाते हो लेकर के जान।
तो कैसे होगा हे दिनमणि! भारत का सम्मान?
तुम्हें चाहिए था संगर में रहना रथ-आरूढ़॥
और चाहिए था दिखलाना वीरों को पथ गूढ़॥

तुम्हीं बता सकते हो जग में कुरुक्षेत्र-संग्राम।
और शिवा-राणा प्रताप का वीर-देश-सम्मान॥
तुम्ही विश्व का आदि काल से देख रहे हो खेल।
धर्म-कर्म का जिन रूपों में होता है नित मेल॥

जिस भुज-बल पर रण में थर-थर करता था संसार।
जिसकी भृकुटि वक्र होने पर कँपता पारावार॥
जिनकी हुङ्कारों पर तड़तड़ करती थी चट्टान।
रहती थी जिनकी छाती अरि-वारों में उत्तान॥

क्या इच्छा अब यही देखने की है हे दिनराज!
निशिचर के ही मस्तक पर हो अब गौरवमय - ताज?
सोए वीर निविड़ में खाकर जम्बुक-पद-आघात।
और वक्ष पर मचे पिशाचिनि-खप्पर का उत्पात॥

श्वान तड़ातड़ हड्डी तोड़े कर उर पर संग्राम।
और प्रतीची के आँचल में आप करे विश्राम॥
जो असि-कुन्त शत्रु-शोणित से खेल रहे थे फाग।
उगल रहें थे समरांगण में भभक - भभककर आग॥

वे सोएँ हतप्रभ अवनी पर ठंढे होकर आप।
इससे बढ़कर और उदय अब होगा क्या जग-पाप?
तन पर राजे पैरों के नीचे की रौंदी धूल।
ये सब करुण - कथाएँ सविता! जाते हो क्यों भूल?

जाते हो तो जाओ पर यह मिट न सकेगा खेद।
बढ़ता ही जावेगा जग में मानव-मानव भेद॥
यह तो है विधि का विधान भू पर सोता गिरिराज।
अमर - शौर्य के मस्तक का रज में सोता है ताज॥

उर में होता है विस्मय क्या फिर जागेंगे वीर?
असि की धारों पर राजेंगे विहँस-विहँसकर धीर?
रक्खेंगे पुश्तैनी संकट की लपटों में शान?
गाएँगे अरि की छाती पर गौरवमय - जय - गान?

वीर - केसरी ने देखा फिर नाले के उस पार।
रोती - बिलखाती थी कुटिया अपना सौख्य बिसार॥
फिर भी था जगमगा रहा प्रज्ञा का विमल-प्रकाश।
आसन मारे ध्यान - मग्न थे बाबा गंगादास॥

पहुँच गए रघुनाथसिंह ले रानी को तत्काल।
जिसका सारा तन मानस के शोणित से था लाल॥
लोहित - वर्णों में अम्बर पर अंकित था गुण-गान।
धीरे - धीरे शून्य हो चले जग के विविध - विधान॥

लौट रहे थे खग नीडों को भर लयवती - उड़ान।
तरु-तरु का कम्पित दल-दल था तम में होता म्लान॥
बासों के झुरमुट का मरमर - रव होता था शान्त।
उन्नत - तरु - शिखरों पर रवि की किरणें थी कुछ क्लान्त॥

ज्ञान-धाम में अभी गूँजता था सन्ध्या का गान।
मृगछाला पर लगा हुआ था अभी यती का ध्यान॥
वीर - कुँवर रघुनाथसिंह ने कर से शीघ्र सँभाल।
सुला दिया अवनी - अंचल पर रानी को तत्काल॥

ध्यान भग्न हो गया यती का, देखा दृश्य विपन्न।
रानी रेशम के अञ्चल पर थी अब मरणासन्न॥
बोला 'हे भारत के गौरव! क्यों बैठे हो मौन?
अवनी - तल पर इस सुकीर्ति का भागी है अब कौन?

देख रहे हो क्या संसृति की मृगतृष्णा हे धीर!
रानी सबको बता रही है जीवन का पथ वीर!
यह भारत की ललनाओं का है पावन - आदर्श।
इसके ही अनुकरण मात्र से होवेगा उत्कर्ष॥

अमर - कीर्ति के लिए विहँसकर हो अन्तक - सम्मान।
तलवारों की धारों पर भी हो छाती उत्तान॥
गूँजे फिर बोटी - बोटी में जय - स्वदेश का गान।
नभ में फहरे उर - शोणित से रंजित - अरुण - निशान॥

इन सब को जी भर दिखलाकर रानी है अब मौन।
ऐसा मन्त्र फूँकनेवाली है वसुधा पर कौन?
अब न समय है अधिक देर तक करने का सुविचार।
नश्वरता के लिये व्यर्थ है करना हाहाकार।"

इतना कहकर गंगाजल ले बाबा गंगादास॥
पहुंच गए रानी के मूर्छित मुख-मण्डल के पास॥
झुककर देखा अभी मन्द-गति में चलता है श्वास।
विकल कर रही थी रानी को गंगाजल की प्यास॥

कान रुके थे सुनने को गीता का चिर-उपदेश।
प्राण रुके थे कहने को केवल अन्तिम-सन्देश।
खुले नेत्र देखा सम्मुख बाबा का पावन-वेश।
'नैनं दहति पावकः' का गूँजा मधुमय-उपदेश॥

आगे रानी मौन हो गई कह न सकी कुछ बात।
अधर हिल रहे थे केवल, था उर में मर्माघात॥
सोच रही थी मन ही मन में करके आँखें बन्द।
जीवन-दीपक का प्रकाश था होता जाता मन्द।

"अमर-शौर्य का अम्बर में फहरेगा अरुण-निशान?
क्या स्वातंत्र्य-भवन का फिर से होगा प्रभु! उत्थान?"
पग-पग धरती पर फिर जन-हित होगा मुण्ड-पहाड़?
क्रूर-शत्रु-उर काँप उठेगा सुनकर सिंह-दहाड़?

जाग उठेगा जन-जन-मन में गीता-विमल-विवेक?
जाग उठेगा उर-उर में हम सब मानव हैं एक?
गूँज उठेगा कण-कण में है विश्व-पूज्य यह देश?
चमकेगा स्वातंत्र-भवन के आँगन में वर-वेश?

डाला यति ने रानी के मुख में गंगा का नीर।
जिसके लिये विश्व में केवल अब थे प्राण अधीर॥
उधर प्रतीची के आँचल पर रवि-मुख हुआ मलीन।
जीवन-दीप इधर रानी का हुआ अन्ध-तम-लीन॥

देख कुटी को कहा यती ने "सुनो देश-सम्मान!
लेकर इसकी सारी लकड़ी अन्तिम करो विधान॥
अब न रही इसकी सार्थकता, नहीं जगत में स्थान।
यही हमारा है रानी की पूजा का सम्मान॥"

क्षण में रानी विहँस उठी पा पावक की मधु-गोद।
अमर-लोक सन्देश सुनाने चला धूम्र सविनोद॥
चला सुनाने कण-कण को फिर वायु अमर-उपदेश।
तन, मन, धन सर्वस्व चढ़ाकर, साजो उज्ज्वल वेश॥